उत्तरापथ

'उत्तरापथ' ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यास है। ऐतिहासिक होते हुए भी आप इसमें आज की कुछ ज्वलन्त समस्याओं का विवेचन पाएंगे।

'उत्तरापथ' का कथानक देश की एक ऐसी दयनीय दुर्बलता की ओर इंगित करता है, जिसके कारण वीर-प्रसविनी भारत भूमि अनेक बार विदेशियों द्वारा आक्रान्त और पराभूत होती रही। मुट्ठीभर बर्बर आक्रान्ता एक छोर से दूसरे छोर तक देश को रौंदते चले गए किन्तु संगठित शक्ति के अभाव में उन्हें कोई रोक न सका। मिथ्या अभिमान में डूबे छोटे-छोटे शासक अपनी-अपनी डफली अलग बजाते रहे।

एक ऐसे ही संघर्ष का चित्रण 'उत्तरापथ' में किया गया है, जब सिकन्दर महान् की विजयोन्मत्त सेनाओं के अबाध प्रवाह को भारतीय नरेश पोरस ने देश की छिन्न-भिन्न हुई शक्ति को संगठित करके रोकने की चेष्टा की।

आज जब फिर हमारी नव प्राप्त स्वतंत्रता को भाषा, प्रान्त और संप्रदायवाद के कारण खतरे का आभास हो रहा है, 'उत्तरापथ' राष्ट्र के लिए 'उद्बोधन' प्रस्तुत करता है।

भाषा-लालित्य, पात्र-चित्रण और कथा-गठन इस उपन्यास की विशेषताएं हैं।

उत्तरापथ

[ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास]

लेखक

यादवचन्द्र जैन

एम० ए०

मूल्य : साढ़े तीन रुपये (३.५० रुपये)
प्रथम संस्करण : मई, १९५७
आवरण : नरेन्द्र श्रीवास्तव
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

भारत

१

○ ○ ○

प्रासाद के बाह्य अलिन्द के उत्तरी भाग में एक कोण पर कैकयाधिपति महान् पोरस निःसंग खड़े थे और वितस्ता के प्रवाह को अनिमेष निहार रहे थे। रात्रि का अन्तिम प्रहर समाप्तप्राय था। चतुर्दिक रजत-चन्द्रिका की शीतलता में भावी दिवस की कल्पना कर पोरस पुलकातिरेक से आह्लादित हो रहे थे। विजय-श्री ज्यों साक्षात् हो उनके नेत्रों में मूर्तित हो आयी थी। प्रसाद के गवाक्षों, अलिन्दों, उच्चस्थ अट्टालिकाओं में चन्द्रिका की शीत रश्मियां समस्त रात्रि अमृत-वर्षा करती रहीं थीं। आनन्द के विलोड़न में पोरस को नींद नहीं आयी थी और वे समस्त रात्रि तूर्यघोष एवं नगाड़ों की गड़गड़ाहट के तीव्र स्वर सुनते रहे थे। वे स्वर समूची राजधानी को जगाये रख कर पोरस के कर्ण-रन्ध्रों को भी उद्दीप्ति प्रदान कर रहे थे।

कैकय राज्य की विशाल सेना, भोर होते-होते, सैनिक-अभियान के हेतु तत्पर थी। राजगृह के अतिरिक्त एतद् प्रान्तों की सैन्य टुकड़ियाँ भी आ-आ कर राजगृह में एकत्रित हो चुकी थीं। अस्तु, उसी व्यस्तता में सैनिकों के प्रवास-स्थानों से हर्षोन्माद, उत्तेजना, उछृंखलता के स्वर वातावरण में गुंजायमान हो रहे थे। मदिरा के प्रभाव से सैनिकों के स्वरों की कर्कशता तीव्रतर हो उठी थी। तब, रात्रि की निस्तब्धता में उभरे वे स्वर अधिक विकराल हो रहे थे।

प्रासाद से दूरस्थ स्कन्धावार के सैनिकों के स्वर उतने तीव्र नहीं थे जितने राजधानी के मध्य अवस्थित पानागारों में एकत्रित सैनिक-समूहों के अट्टहास, नीरवता को थर्रा देने वाली हर्ष-ध्वनियाँ, उन्माद-भरे विजय-घोष राजधानी की शान्त निद्रा को भंग किये हुये थे।

तभी पोरस के कानों में गूँजा—"महाराजाधिराज कैकयराज पोरस की जय ! जय ! जय !"

पोरस ने पुलक में पलक मूंद लिये और तब अपने नेत्र पुनः वितस्ता की जलधार पर केन्द्रित कर लिये। दोपहरी-सी फैली हुई उस चाँदनी में वितस्ता का स्निग्ध-जल अधिक आकर्षक लग रहा था। पोरस का मन हो आया—वितस्ता का जलपान करे। उन्होंने वहीं से दृष्टि दौड़ायी। नीचे प्रासाद के सिंहद्वार, प्रवेशद्वार, गवाक्ष, स्थल-स्थल, प्रहरियों के उत्तुंग भालों से रक्षित हैं। संगमर्मर के श्वेत धवल प्रस्तर-द्वारों के समक्ष खड़े हुए सतर्क प्रहरी बड़े प्रिय लग रहे थे। किन्तु पोरस ने ध्यान किया—साधारण जन की भाँति वे स्वेच्छा की पूर्ति यों तो नहीं कर सकते, न। वे तत्काल जा कर वितस्ता का जल पान नहीं कर सकते। यदि वे हिलेंगे तो समस्त राजगृह हिल उठेगा। यदि वे डोलेंगे तो समस्त राजप्रासाद डोल जावेगा। उनके एक दृष्टि-निक्षेप पर राज-प्रासाद की समस्त अन्तर्वासिक सेना, दौवारिक, प्रहरी काँप जावेंगे। वितस्ता तक पहुँचने के पूर्व उन्हें कितनी औपचारिक क्रियाओं की शरण लेनी होगी, कितने औपचारिक प्रदर्शनों के दर्शन करने होंगे—उनकी कल्पनामात्र से वितस्ता के जल-पान की उनकी तात्कालिक सहज-सरल इच्छा समाप्त हो गयी।

स्कन्धावार से आने वाले दुंदुभि-शब्द एवं तुरही-नाद से अभी भी पोरस के कर्ण-कोरों को उत्तेजना प्राप्त हो रही थी।

तभी प्रभात-किरण फूटी।

नव-नव संदेश-वाहिनी प्रभात की प्रकाश-रश्मियाँ, नव ज्योत्स्ना,

नव चेतना, नव जाग्रति, नवोल्लास प्रकट करने लगीं। अंशुमाली की वह रक्ताभ बाल-छवि निहारकर पोरस उन्मत्त हो उठे। विजय-श्री चूमने की अपार आकांक्षा में रात्रि-जागरण की थकन ज्यों नेत्रों से विलीन हो रही थी तथा नव स्फुरण, नव जागरण, नव कल्पनायें रोम-रोम में पुलक भर रही थीं।

प्रभात ने परागमय अनुराग का नव जागरण समूची नगरी में प्रस्फुटित कर दिया। प्रकृति-नटी का हास-परिहास प्रकाश की रक्त-वासन्ती बेला में सर्वत्र फैल गया। नव-नव कलिकायें, नूतन किसलय, उल्लासमय नवीन पुष्प शान्तिदायिनी नमित वायु से कुसुमित-मुखरित हो गये। नव पुष्प अपनी मादक सुवास प्रसारित कर आलोक को सुगन्धिमय बना रहे थे। यत्र-तत्र जल-प्रपात खिल उठे। आम्र-काननों में, मयूर नृत्य-भंगिमा में, मयूरी की केलि का सहयोगी हो मत्त झूमने लगा। भ्रमर-गुंजन अलसित पुष्पावलियों पर कौतुक-नर्तन कर रहा था। शतदल कमल विकसित हो जलाशयों की श्रीवृद्धि करने में फूले नहीं समा रहे थे। वितस्ता की जल-कण सहित विलासमयी थिरकती लहरें पुलकित हो एक दूसरी को आलिंगन-पाश में आबद्ध कर रही थीं। पक्षी-रव से निरभ्र नीलाकाश मुखरित हो उठा था। संसार अन्धकार और निद्रा त्याग कोयल की मादक तन्त्री का स्वर पीकर अपने दैनिक कार्यों की ओर उन्मुख हुआ।

यों, यदि प्रभात कहीं आनन्द, सुख व हर्षातिरेक की अबाध धारा प्रवाहित करता है तो वहीं कहीं विषम विषाद भी प्रकट होता है। प्रभात जहाँ जीवन-दायक के रूप में प्रस्फुटित होता है, वहीं कहीं मृत्यु का ताण्डव भी निर्बाध गति पर प्रकट होता है। वे लतायें, वे पुष्प, वे जल-कण, वे पुष्प-किरीट, वे नव कलिकायें, सुरभि-सिञ्चन से आप्लावित वह मलय-पवन तभी कहीं प्रभात की सूचना देकर प्रणयी को वियोग की प्रकम्पित नीरसता से क्षोभ सन्ताप प्रदान करती है। जहाँ एक ओर

अन्धकार विलीन होता है वहाँ दूसरी ओर धवल-चन्द्रिका की शीतलता समाप्त हो उत्ताप की तेजस्विता का आरोप होता है। तभी कहीं उस उत्तपन में नवोल्लसित आशायें विदीर्ण होती हैं।

किन्तु, आज राजगृह का वह प्रभात जन-जन में हर्षोन्माद भर रहा था।

तूर्यघोष से योद्धाओं की भुजायें फड़क उठी थीं। दुंदुभि और नगाड़ों के गगन-वेधी नाद राजधानी के अणु-अणु में चेतना की उद्दीप्ति भर रहे थे। सैनिक-श्रेणियों के विभिन्न सैन्य-बलाधिकृतों ने अपनी-अपनी श्रेणियों का संचालन प्रारम्भ कर दिया था।

पोरस की विशाल सेना अभियान के हेतु तक्षशिला की ओर उन्मुख थी। राजधानी के अन्तर्भाग से लेकर प्राचीर के बाह्य तोरणों तक नागरिकों की अपार भीड़ सैन्य-अभियान की गति-विधि देखने के हेतु राज-पथों के दोनों ओर खड़ी थी तथा कैकय-राज्य के राज्य-चिह्नों सहित फरफराती पताकायें देख-देखकर उनके मन उल्लास से भर रहे थे।

२

◇ ◇ ◇

वाराणसी से सात सौ पचास योजन दूर गान्धार के प्रसिद्ध जनपद की विश्व-विख्यात राजधानी तक्षशिला अपने सम्पूर्ण वैभव एवं श्रेष्ठता सहित अवस्थित थी। तक्षशिला शिक्षा के अतिरिक्त तात्कालिक भारतीय सभ्यता, कला, संस्कृति, व्यवसाय-वाणिज्य का सर्वप्रसिद्ध केन्द्र था। न केवल भारतवर्ष के ही प्रसिद्ध व्यावसायिक केन्द्रों से अपितु विदेशों से भी उसका सीधा सम्पर्क था। एशिया एवं भारत के बीच के व्यापारिक सम्बन्धों के साथ ईराक, ईरान, फारस, मिस्र, बेबीलोन, कम्बोडिया, यूनान आदि-आदि देशों से उसके पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हुए थे।

ईसा से चौथी शताब्दी पूर्व भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में जो ईरानी आक्रमण हुए थे उनमें भारत एवं फारस के राजनैतिक सम्बन्धों-सम्पर्कों से हानि के साथ-साथ भारत को कुछ लाभ भी हुए थे। व्यापार-वाणिज्य बढ़ा था। पारसीक शिल्प एवं भवन-निर्माण-कला उन दिनों बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। पारसीक शिल्पकारों एवं भवन-निर्माणकों ने भारत में पारसीक शैली का प्रचार किया। तक्षशिला में पारसीक शैली के भवनों के निर्माण की बहुलता थी।

तक्षशिला वाणिज्य का मुख्य केन्द्र बना हुआ था। चीन का रेशम, कलिंग, बंग तथा काशी के सूती वस्त्र, पाण्ड्य देश के रत्न, सामुद्रिक मुक्ता, पद्मराग, वैदूर्य, हीरे तक्षशिला के श्रेष्ठि-चत्वरों में क्रय-विक्रय होते थे। मैरेय, मधु, आसव, विषोपविष, औषधियां, नाना प्रकार की सुगन्धियाँ, धातु-उपधातुओं का आदान-प्रदान, सदैव होता था। पश्चिमी गान्धार, कपिश, बाल्हीक आदि स्थानों को जाने का राजमार्ग तक्षशिला से होकर ही था। अस्तु, अनेक देशों के व्यापारी भारतीय वस्तुओं को क्रय करते व अपने देश की वस्तुओं को बेचते थे।

भारत के प्रमुख व्यावसायिक केन्द्रों एवं विभिन्न जनपदों की राजधानियों से भी तक्षशिला का सीधा सम्पर्क था। वाराणसी, श्रावस्ती, अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, चम्पा से राजनैतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध बने हुए थे।

उन दिनों भारत अपने केन्द्रीय शासन के अभाव में छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। ये छोटे राज्य जनपद कहलाते थे तथा इनमें भारत भर में सोलह जनपद विख्यात थे। अपनी-अपनी सीमाओं में आबद्ध ये जनपद ही सर्वसत्ता-सम्पन्न गण-राज्य थे। इन्हीं में अङ्ग की राजधानी चम्पा, काशी की राजधानी वाराणसी, वज्जी-संघ की राजधानी मिथिला, मल्ल-संघ की राजधानियां कुशीनारा तथा पावा, चेदि की राजधानी शुक्तिमती, कुरु की राजधानी इन्द्रप्रस्थ, पाँचालों की राजधानी कम्पिला, मत्स्य की राजधानी विराटनगर, शूरसेन की राजधानी मथुरा, अस्सकों की राजधानी पोदना, कोशल की राजधानी श्रावस्ती, अवन्तिजन-पद-संघ की राजधानी महिष्मती से तक्षशिला का सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं व्यापारिक नाता बना हुआ था। यही नहीं, तात्कालीन भारत के प्रसिद्ध नगरों में वैशाली, विदिशा, उज्जयिनी, साकेत, कपिलवस्तु आदि भी तक्षशिला से अपने शैक्षणिक एवं व्यावसायिक सम्पर्क बनाए हुए थे।

तक्षशिला के प्रसिद्ध हाटों में स्वर्ण, रजत, मुक्ता, माणिक्य, रेशम, के भाण्डार भरे हुए थे। व्यापार की व्यवस्था में तक्षशिला का स्वच्छ नगर शासन की गुरुता सहित तात्कालीन सभ्य देशों में सर्वाधिक प्रशंसित व प्रसिद्ध था। भारत के व्यापार के विशाल केन्द्र, तक्षशिला के चत्वरों में अतुल सम्पत्ति भरी हुई थी। वहाँ के श्रेष्ठि-जन रत्नाभरणों से अलंकृत, रेशमी वस्त्रों में वेष्टित, उष्णीष पहने, विभिन्न रंगों के उत्तरीय झलकाते, समूचे दिन लाखों का मोल-तोल करते थे।

इन दिनों तक्षशिला के राज्य-सिंहासन पर आम्भी सुशोभित था। गांधार-राज आम्भी एक कुशल शासक था। उसने अपने राज्य का जैसा सुन्दर शासन-प्रबन्ध किया था तथा तक्षशिला को जैसी महत्ता प्रदान की थी उससे उसके गण-राज्य की स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ थी।

आम्भी की सबल सेना में पदाति, रथ, अश्व, गज-सेना प्रचुर मात्रा में थी।

इस सबके साथ तत्कालीन भारत में जो शासन की छिन्न-भिन्नता, केन्द्रीय शासन का अभाव, पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, विग्रह विद्यमान थे, उनका स्पष्ट प्रभाव आम्भी में भी प्रकट हो रहा था।

भारत के उत्तरापथ पर अवस्थित सप्तसिन्धव प्रदेश में उस समय लगभग चौबीस गण-तन्त्र छितरे हुए थे। उन्हीं में पूर्वी गांधार, सिन्धु और वितस्ता के मध्य में स्थित था। इन सभी राज्यों में समय-समय पर एक न एक विवाद को लेकर विकराल युद्ध हुआ करते थे। अनेक बार राज्य-विस्तार की महत्त्वाकांक्षा से उत्पीड़ित कोई न कोई शासक दूसरे पर सैनिक अभियान करता रहता था।

अस्तु, जहाँ एक ओर तक्षशिला में स्वर्ण-रत्नों के प्रचुर भाण्डार भरे हुए थे, जहाँ एक ओर तक्षशिला के नागरिक वैभव-विलास में ओतप्रोत थे; जहाँ उनके वेश-विन्यास में बहुमूल्य रेशम झलकता था, बहुमूल्य मुक्ता-लड़ियाँ, रत्नों की मेखलायें कंठ एवं बाहुमूलों पर दीपित

होती थीं, जहाँ विश्व-प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में वेद-वेदांग, कला, संस्कृति, राजनीति, दर्शन, आध्यात्म, धर्म, नीति, रीति, युद्धकला-कौशल, शस्त्र-विद्या का पठन-पाठन होता था, वहाँ तक्षशिला विश्वविद्यालय के सैनिक शिक्षालय में धनुष-बाण, खड्ग, भाले, युद्ध-क्रत-रचना, अश्वारोहण, गज-संचालन, रथों की दौड़, धनुर्युद्ध, मल्ल-युद्ध की शिक्षा प्राप्त किये हुए गान्धार युवकों की सैन्य-शक्ति भी विशाल थी।

गांधार-राज आम्भी की सेना में लगभग बीस हज़ार पदाति, तीस हज़ार अश्वारोही, दो सौ रथ, दो सौ रणहस्ती सम्मिलित थे ।

तक्षशिला नगर के चतुर्दिक एक सुदृढ़ प्राचीर विद्यमान थी जिसके उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चार सिंहद्वार थे, जिनमें ऊँचे-ऊँचे तोरणों का निर्माण किया गया था । ये तोरण ही एक प्रकार से नगर के रक्षक थे। उन उच्च तोरणों की रक्षा सैनिक टुकड़ियों से हुआ करती थी । तोरणों की सर्वोच्च गुम्बदों पर प्रतिपल सैनिक पहरा दिया करते थे जो बहुत दूर तक की वस्तु देख सकते थे। आपद्काल में उनके घोष पर समस्त नगरी सतर्क हो जाती थी।

गान्धार पर युद्ध के बादल मँडरा रहे थे। कैकयराज पोरस एवं गान्धारराज आम्भी में ज्यों जन्मजात वैर था। भारत के वाहीक खंड में जो छोटे-बड़े जनपद राज्य कर रहे थे उनमें गान्धार कैकय ही सर्वाधिक शक्तिशाली व प्रसिद्ध थे। उन छोटे-छोटे जनपदों को अपने में सम्मिलित करने के हेतु गान्धार एवं कैकय में एक प्रकार से प्रति-द्वन्द्विता बनी रहती थी।

अस्तु, उस प्रतिद्वन्द्विता को मूलतः समाप्त करने के प्रणीत लक्ष्य को लेकर कैकय के महा मेधावी शासक पोरस ने गान्धार की राजधानी तक्षशिला पर सैनिक अभियान की घोषणा की थी।

३

◇ ◇ ◇

सांकल में आज सौन्दर्य-प्रतियोगिता हो रही थी। सांकल के महाराज-प्रासाद में मध्याह्न काल में, एक विशेष समारोह सम्पन्न होने को था। सम्पूर्ण सांकल नगरी औत्सुक्य-उत्फुल्ल से ओतप्रोत थी। नागरिक उत्कंठा में खिले-खिले, सौन्दर्य में उमगे-उमगे, भावी-कल्पना में डूबे, हाटों, राजमार्गों में आनन्द-वार्ता, स्नेह-चर्चा करते हुए घूम रहे थे।

कठ-राज्य आज अपने शासक का चुनाव करने जा रहा था। कठ-राज्य की परम्परा के अनुसार केवल शासक का चुनाव ही नहीं अपितु वह एक प्रकार की सौन्दर्य-प्रतियोगिता होती थी। सर्वाधिक स्वरूपवान, मेधावी, पराक्रमी, शस्त्र-कुशल, नीति-निपुण, तेजस्वी महापुरुष का चुनाव कर जनता उसे शासन-सत्ता पर आरूढ़ किया करती थी।

इस विशिष्ट प्रतियोगिता के हेतु सांकल नागरिकों में प्रातःकाल से ही हर्षोन्माद भर रहा था। ठट्ठ के ठट्ठ नागरिक सांकल के श्रेष्ठि-चत्वरों में एकत्र होकर सम्भावित अधिपति के विषय में तर्क-वितर्क करते घूम रहे थे। किन्हीं के विचारों में—' अमुक व्यक्ति सर्वथा उपयुक्त है।"

किन्हीं का मत होता—"अमुक किशोर ने अमुक तरुण को द्वन्द्व-युद्ध में परास्त कर अपने शौर्य-पराक्रम का अभूतपूर्व परिचय दिया है।"

वह दिवस एक राष्ट्रीय पर्व-सा प्रतीत हो रहा था। कहीं नट अपने हस्तलाघव के प्रदर्शन करते घूम रहे थे, कहीं देवालयों में संगीत एवं नृत्य समारोह हो रहे थे, कहीं अखाड़ों में व्यायाम-प्रदर्शन। अनेक-आश्रमों में, स्थान-स्थान पर व्यायाम-प्रदर्शन, खेल-कूद, नृत्य संगीत एवं शस्त्र-संचालन-प्रतियोगितायें हो रही थीं। सर्वत्र प्रीति-भोज, संगीत-गोष्ठियों, काव्य-गोष्ठियों के आयोजन किये गये थे।

सांकल के पार्श्व में आनन्द उमगाती इरावती बह रही थी। उसका स्वच्छ-निर्मल नीर सांकलवासियों में हर्षोन्माद भर रहा था। अनेक नौकायें इरावती में पड़ी हुई थीं जिनमें संगीत-गोष्ठियों एवं नृत्य-गोष्ठियों के आयोजन थे। नर-नारी जल-बिहार करते घूम रहे थे। अनेक युवक जल की तैराई-प्रतियोगिता में लीन थे।

सांकल के दूसरे छोर पर अवस्थित सांकल के भव्य दुर्ग में सैनिक-प्रदर्शन हो रहे थे। दण्डपाल एवं अन्य सैन्याधिकारी अपनी-अपनी श्रेणियों के व्यायाम एवं शस्त्र-प्रदर्शनों में लीन थे। सैन्य अभियान के समय होने वाले तूर्य-घोष, दुन्दुभि-रोर की भांति ही उच्च स्वरों में तूर्य एवं दुन्दुभि की चीत्कारें सुनाई पड़ रही थीं।

अश्वारोही सैनिक नगर में व्यवस्था के हेतु अपने-अपने अश्वों पर घूम रहे थे। वे हृष्ट-पुष्ट सैनिक धनुष को पार्श्व में बांधे, पृष्ठ भाग में तूणीर कसे, वर्म धारण किये, दाहिने हाथ में ऊँचे भाले लिये नगर-मार्गों के चक्कर लगा रहे थे।

अन्ततः मध्याह्न होते-होते समस्त सांकल नगरी राज-प्रासाद के बाह्य-उद्यान में स्थित वृहदाकार पंडाल में एकत्र हो गयी। नागरिक अपने-अपने बहुमूल्य वेशों में, रत्न-माणिक्य-मुक्ता धारण किये, रेशमी उष्णीष पहने, स्वर्ण-तार खचित उत्तरीय झलकाते एक ओर विराज रहे थे। इनमें श्रेष्ठि जन, उच्च-अभिजात वर्ग, मध्यम वर्ग, श्रमिक वर्ग सभी थे। वे अपनी-अपनी मर्यादाओं के अनुसार स्थान ग्रहण किये हुए थे।

पण्डाल में दूसरी ओर सांकल की कुल-कामनियों का समुदाय एकत्र था। स्त्रियां अनन्त मूल्यवान स्वर्ण-रत्नाभूषण धारण किये हुए थीं। कठ की उन सुन्दर रमणियों के पिंगल केश, नील वर्ण नेत्र एवं स्वर्ण-वर्ण गात्र उपस्थित समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट किये हुये थे। तरुणियों की कर्पूर-सम श्वेत-त्वचा पर झलकती मुक्ता-लड़ियां, माणिक्य-हीरक मेखलायें, सप्तरंगी परिधान, रेशमी कौशेय, भाँति-भाँति के अलंकरण, अत्याकर्षक प्रसाधन-सामग्रियों से सुसज्जित सुवासित वेश बड़े प्रिय प्रतीत हो रहे थे। उनके कर्णफूलों के झलकने पर ज्यों विद्युत कौंध जाती थी।

नारियों में रूप की होड़-सी लगी हुई थी। उस समय उस स्थान पर सांकल की रूपसियों की रूप-मद-गागर भरी हुई थी। वे सौंदर्य में विश्व का आह्वान करने को तत्पर थीं। आर्य नारियों की फेनिल-सी धवल-देह-यष्टि, उच्च-भाल पर इठलाते केश-कुंतल, स्वस्थ व उन्नत नासिका, रससागर से मादक नयनद्वय, सुडौल बाहुमूल, पतली सुकोमल उंगलियां, रंग-बिरंगे वस्त्राभरण एवं अलंकरण, तन्वंगियों के श्वेत-पीत-गात्र की निश्छलता, उनकी आकृतियों में नैतिकता की मर्यादा एवं पवित्रता, आरक्तक स्वरूप की गरिमा सभी कुछ देखकर प्रतीत होता था कि विश्व का विलास-वैभव, यौवन, एक ही स्थान पर केन्द्रित है।

नागरिक हर्षोत्फुल्लसहित, हास्य-मुद्राओं में बैठे थे। बालक यत्र-तत्र किलकारियाँ भर रहे थे।

पंडाल में स्थान न पाने के कारण सहस्रों नागरिक राजपथ में व इधर-उधर यों ही घूम रहे थे।

व्यवस्था रखने वाले सैनिक अपने स्वस्थ व्यक्तित्व एवं सुडौल भुजदण्डों को उभारते, श्मश्रु ऐंठे, हाथ में खड्ग व नोकीले भाले ताने जनसमुदाय के किनारे खड़े थे।

अब तक तूर्य-घोष एवं दुन्दुभि-निनाद सहित सैनिकों की अनेक

श्रेणियाँ दुर्ग से आकर प्रासाद के उत्तरी भाग की ओर खड़ी हो गयी थीं।

सांकल के पुष्प-उद्यानों से बहकर आता सुगन्धित मन्द समीर नागरिकों की व्यस्तता को आश्वस्त कर रहा था।

पंडाल में बीचोंबीच एक विस्तृत स्थान रिक्त पड़ा हुआ था। इस स्थान से दूर-दूर हटकर कठ-जनपद के गण-परिषद-सदस्य, शासनाधिकारी, सैन्याधिकारी, श्रेष्ठि-जन, सामन्त आदि बैठे हुए थे।

इस रिक्त स्थान पर ही अनेक प्रकार से प्रतियोगिता सम्पन्न होने को थी। यहीं एक ओर एक भव्य युवक-दल पीठिकाओं पर विराजमान था। इन युवकों के सुन्दर स्वरूप, कुंदन से गात, चपल आकृतियाँ, चंचल नेत्र, बैठने की व्यवस्था, औत्सुक्य में कुलबुलाती गर्दनें यह व्यक्त कर रही थीं कि ये ही वे कुल-गौरव हैं जो प्रतियोगिता में भाग ले रहे हैं। इन्हीं में से किसी एक का भाग्य-सूर्य चमकने को है जो कठ-गणतन्त्र का नेतृत्व करेगा। इन्हीं में से कोई एक योद्धा सर्वविजेता की उपाधि प्राप्त करेगा। इन्हीं में से एक सांकल का सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य, सर्वाधिक सुन्दर नागरिक घोषित किया जायेगा।

यों कठ जनपद के सभी बालक आश्रमों में निवास करते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा राज्य द्वारा सम्पन्न होती थी। अस्त्र-शस्त्र संचालन, शारीरिक व्यायाम, नृत्य, संगीत, साहित्य, संस्कृति के ये पूर्ण ज्ञाता होते थे। कठ युवक व युवती अपने सौंदर्य, साहस, शौर्य एवं पराक्रम के लिये समस्त बाहीक प्रान्त, समूचे उत्तराखण्ड में सर्वमान्य थे। कठ युवक जन्मजात योद्धा होता था। इनमें वह गुण केवल शारीरिक गठन का ही नहीं अपितु मानसिक संवर्धन का भी था। धर्म, नीति, दर्शन, आध्यात्म सभी की पर्याप्त शिक्षा प्रत्येक युवक को दी जाती थी। दस उपनिषदों में कठोपनिषद् इस कठ जनपद की गण-सभा में ही परिपूर्ण हुआ था।

अस्तु, प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई । सब ओर से करतल-ध्वनियों व हर्ष से वातावरण गूंज गया ।

सर्वप्रथम द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ ।

गण-संवाहक ने उच्च-स्वर में दो विशिष्ट नाम पुकारे । कठ-गण-तन्त्र के गण-संवाहक परम तेजस्वी एवं नीतिज्ञ वीरव्रत सभापति का आसन ग्रहण किये हुए थे ।

उन्होंने पुकारा—"वृहद्रथ एवं समिद्धार्थ ।"

उस विशिष्ट युवक-समुदाय से दो तेजस्वी युवक सामने आये । ये कसे हुए अन्तर्वासक पहने हुए थे । इनकी आकृतियों में कान्ति चमक रही थी । दोनों ही हाथों में नग्न खड्ग लिये उस रिक्त स्थान में बीचों-बीच आ खड़े हुए और आदेश की प्रतीक्षा करने लगे ।

तभी गण-संवाहक वीरव्रत ने निर्देश किया—"प्रारम्भ हो ।"

पलमात्र में दोनों ही वीरों की खड्गों से झन्-झन्-झन् के स्वर ध्वनित होने लगे । वे बारम्बार एक दूसरे से पृथक् होते और तब पहले से अधिक तेजस्विता में उनके खड्ग जटिल हो लिपट जाते । प्रत्येक बार दर्शकों की करतल-ध्वनियों व हर्षोन्माद से आकाश गूँज जाता ।

देखते-देखते समिद्धार्थ ने वृहद्रथ को दाब लिया और उसकी खड्ग एक झटके में दूर फेंक दी । समिद्धार्थ विजयी घोषित किया गया ।

तदनन्तर एक-एक करके तेरह युवक आये और समिद्धार्थ ने सभी को परास्त किया ।

जयकारों के मध्य समिद्धार्थ ने उन्नत ग्रीवा व सुदृढ़ वक्ष को उभारते हुए सब को विनय-सहित प्रणाम किया । परम स्वरूपवान समिद्धार्थ को देखकर सभी ने करतल ध्वनि से अपनी सराहना व्यक्त की ।

खड्ग-युद्ध के अनन्तर धनुर्विद्या की प्रतियोगिता की घोषणा की गयी । सभापति वीरव्रत ने प्रकट किया—"प्रासाद के परवर्ती स्थान में

जाकर धनुर्प्रतियोगिता सम्पन्न होगी। सभी लाग यथास्थान बैठे रहें।"

निर्णायकों एवं प्रतियोगियों के दो विशिष्ट दल धनुर्प्रतियोगिता के हेतु एक ओर बढ़ गये तथा शेष दर्शक यथास्थान बैठे रहे। अनेक बार कौतूहल मिश्रित हास्य एवं समयाधिक्य की उदासी को व्यक्त करने वाले उन्मादी स्वर वातावरण में गूंज जाते थे।

दीर्घ प्रतीक्षा के अनन्तर समिद्धार्थ विजयश्री लिये हास्य-मुद्रा में सभास्थल पर आ गया। धनुर्प्रतियोगिता में भी विजय उसी की थी। दर्शकों ने करतल-ध्वनियों से उसका स्वागत किया।

समय बढ़ रहा था। औत्सुक्य में भी दर्शक कुछ ऊब से रहे थे, तभी सभाध्यक्ष वीरव्रत ने मल्ल-युद्ध की घोषणा की।

उस रिक्त स्थान में पूर्व से ही व्यवस्थित कच्ची भूमि पर मल्ल-युद्ध-क्रिया प्रारम्भ हुई। देखने में अधिक बलिष्ठ प्रतियोगी भी समक्ष उपस्थित हुए किन्तु किसी न किसी घात-प्रतिघात से समिद्धार्थ ने सभी को परास्त कर जयमाल स्वयं धारण की।

संथागार में एक दिन पूर्व होने वाले शास्त्रार्थ एवं वाक्-प्रतियोगिता में समिद्धार्थ पहले ही विजयी घोषित किया जा चुका था।

अस्तु, सभा-मण्डप समिद्धार्थ के जयकारों व करतल-ध्वनियों से गूँज उठा।

सभाध्यक्ष साथ ही कठ गण-तन्त्र के गण-संवाहक वीरव्रत ने घोषणा की कि आज से कठ जनपद के राज्य-सिंहासन को सर्वश्रेष्ठ समिद्धार्थ सुशोभित करेंगे।

"वे ही कठ-जनपद की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी प्रियम्बदा को भी वरण करेंगे," उपस्थित जनों की ओर से शब्द गूंजे।

"ऐसा कदापि न होगा। वह असम्भव है। प्रियम्बदा स्वयं वरण कर चुकी है।" एक वर्ग से स्वर स्पष्ट हुए और अनेक ओर से खड्ग चमक गए।

"शांत-शांत ! उसके लिये यह अवसर नहीं है," सभाध्यक्ष ने उच्च स्वर में कहा—"मैं आज का यह उत्सव सभी को धन्यवाद देकर विसर्जित करता हूँ।"

४

◇ ◇ ◇

"सुना है तक्षशिला में यवन-रमणियाँ हैं।"

"और अनन्य-सुन्दरियां भी···।"

"उससे भी अधिक लावण्यमयी कठ-कुमारियाँ तक्षशिला में हैं," पहले सैनिक ने कहा।

"होंगी। इस प्रकार की अनर्गल वार्ता बन्द करो। सैनिक अभियान के क्षणों में इस प्रकार का वार्तालाप अशोभनीय है," निकटवर्ती सैनिक ने अपनी ओर से बात जोड़ दी।

"सैनिक अभियान के क्षणों में ही क्यों—हर समय इस प्रकार की चर्चा अशोभन का विषय है", चौथे सैनिक ने कहा।

पोरस महान् की उन्मादिनी सेना तक्षशिला की ओर बढ़ रही थी। तूर्य और दुंदुभि के तुमुल घोष से थोड़ी-थोड़ी देर में आकाश गूंज उठता था। पोरस की पदाति सेना के पराक्रमी वीर भूमि को रौंदते, पोरस की जय के गगन-बेधी स्वर उच्चारण करते आगे बढ़ रहे थे। उनके पीछे श्रेणि-बद्ध अश्वारोही अपने सबल अश्वों पर चल रहे थे। शरीर पर वर्म धारण किये हुए, शिरोभाग पर शिरस्त्राण पहने, कंधों पर धनुष-तूणीर कसे, कमर में खड्ग लटकाये, हाथों में भाले लिये ये वीर-सेनानी आकृतियों

में तीक्ष्णता व्यक्त कर रहे थे, साथ ही विनोद-वार्ता में लीन, आगे बढ़ रहे थे। इन्हीं में एक वर्ग उपर्युक्त वार्ता में निमग्न था। दो दल हो गये थे। एक का मत था कि परम शक्तिमती नारी को हमें नारी के ही मोहक स्वरूप में देखना चाहिये। उसे हमें वासना की कठपुतली, इन्द्रियासक्ति की तीव्र-लिप्सा-शान्ति के यन्त्र के रूप में कदापि नहीं मानना चाहिये।

"नारी के प्रति इस प्रकार के कलुषित विचार मस्तिष्क को कुंठित एवं शरीर को गतिहीन बनाते हैं। प्रत्येक सैनिक का एक आदर्श है। नारी की गरिमा उसके लिये वन्दनीय है। उसी के लिये क्यों पुरुष के लिये वह एक प्रकाश पुंज है।"

"हमें इस प्रकार की दार्शनिकता की आवश्यकता नहीं है। वह रखे रहो; राजगृह लौटकर सुनाना। हमें गान्धारराज का मान-भंग करना है, हम सैनिक अभियान को निकले हैं। यह देखो······यह हमारे हाथों में मैरेय-चषक पात्र हैं जो रोम-रोम में उत्तेजना भर रहे हैं। हः हः हः, अभिसार-सुन्दरियाँ। कौन मूर्ख कहता है कि हम उन्हें व्यथित करने जा रहे हैं! उन्हें पीड़ा पहुँचायेंगे, या हम उन्हें अवसर देंगे कि वे हम पर अपनी कुटिल भृकुटियों से आक्रमण करें और तब हमारा वीरत्व ही तिरोहित हो जावे। न, न, कदापि नहीं। किंचित नहीं, पलभर को नहीं। क्या तुम सोचते हो कि हम आदर्श से इतने च्युत हैं। तुम्हीं बड़े नैतिक आस्थावान हो! तुम्हारा यह भ्रम है। हम भी तुमसे अधिक नारी को वन्दनीय मानते हैं। उस पर हम वैसी ही आस्था रखते हैं। वह हमारे देश की संस्कृति है, सभ्यता है···किन्तु सुनो, हमने सुना है वहाँ कुछ रूप-जीवा हैं?···हाँ हैं। तुम चुप हो गये। हम उन्हीं की बात कहने जा रहे थे। हम···।"

"यह अनर्गल एवं मूर्खतापूर्ण प्रलाप समाप्त करो चण्डवर्मा।"

"हो सकता है, हो सकता है । तुम चाहो तो तक्षशिला पहुँचकर युद्ध से पृथक् हो जाना और किसी भिक्षु-संघ के आश्रम में पहुँचकर दर्शन-पाठ करना । तक्षशिला में वह प्रबन्ध अधिक है । सर्वत्र संघाराम बने हुए हैं । तब हम देखकर प्रसन्न होंगे कि ध्रुवदेव चीवर धारण किये है, आसन्दी पर बैठा है, उसके हाथ में पिटक है और वह सघोपदेश दे चुका है तथा अब भिक्षा के हेतु नगर-कीर्तन करने जा रहा है । ह हः हः, ध्रुवदेव, सच उस समय कितना शोभनीय होगा जब हमारी सेना अभियात्स्य के हेतु उन्मुख होगी और ध्रुवदेव अभिधम्म पिटक का मनन कर रहा होगा..."

"सावधान चण्डवर्मा ! धार्मिक मत-मतान्तरों पर टीका टिप्पणी करने का परिणाम जानते हो क्या है ? किसी नारी के प्रति तथैव धर्म-संघ के प्रति ध्यान रक्खो, मैं एक शब्द भी नहीं सुन सकता । सैनिक-वेश धारण कर लेने मात्र से ऐसा तो नहीं है कि हमने मनुष्यता ही उतार फेंकी है । मैं दण्डपाल को निश्चित संकेत दूंगा कि तुमसे या तुम्हारे सदृश अन्य लोगों से कैकय की सैन्य-प्रतिष्ठा को बचाये रहें ।"

"हाँ, मुझे तुमसे पहले दण्डपाल से भेंट करनी है", कहते हुए चण्डवर्मा ने अपने अश्व को श्रेणि से किंचित् पृथक् करने का अभिनय किया, "लो, मैं चला । मुझे अपना वह भय दण्डपाल के समक्ष प्रकट करना ही है।..."

"कौन-सा ? चण्डवर्मा !" साथ के एक अन्य सैनिक ने प्रश्न किया।

"यही कि ध्रुवदेव तक्षशिला में प्रव्रज्या लेने जा रहा है।..."

"सैनिकों में एक अट्टहास गूंजा और तभी सामने से तीव्रतर तूर्यघोष, नगाड़े की तीक्ष्ण गड़गडाहट, "महाराज पोरस की जय—कैकयराज की जय—कैकय संघ की जय के दिशा-बेधी स्वर उभर आये ।

"ओः वह देखो । वह रहा तक्षशिला का विशाल नगर और वह दिख रही है गान्धारराज आम्भी की संकुचित सैन्य-शक्ति," उस टुकड़ी के

संचालक सैन्य बलाधिकृत पर्वतक ने उँगली के संकेत सहित व्यक्त किया।
सभी सैनिकों में शत्रुदल को देखकर ज्यों उत्तेजना भर गयी।

तक्षशिला से एक योजन से भी कम दूर पोरस महान् की सेना जय-ध्वनियों से आकाश गुँजा रही थी। पोरस का शिविर पड़ा हुआ था। सैनिकों की श्रेणियाँ सजग, सतर्क हो अभियान के हेतु तूर्य-घोष की प्रतीक्षा में थीं।

पोरस का एक दूत आम्भी के पास अधीनता स्वीकार कर लेने का, मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने का, ईर्ष्या-द्वेष त्यागने का प्रस्ताव लेकर गया हुआ था।

पोरस, कैकय के अन्य गण-सदस्य, उच्च-सैन्यबलाधिकृत एवं महासेनापति चकित थे कि बिना किसी रोक-टोक के वे तक्षशिला तक बढ़ते चले आये। यों आम्भी भी एक सबल शासक है। उसकी सैन्य-शक्ति की धाक जमी हुई है। बाह्लीक प्रदेश के कुछेक अन्य जनपदों पर सैनिक अभियान कर उसने भी अपने राज्य की सीमायें बढ़ायी हैं। तब कैसे उसने कैकय की सेना को यों तक्षशिला के प्राचीरों तक चले आने दिया। कैसे गांधार की सैन्य-शक्ति आक्रमण-प्रत्याक्रमण के हेतु नहीं अपितु पोरस के स्वागत करने के हेतु सतर्क दिख रही है। छल युद्ध की भी सम्भावना न्यूनतम थी। तभी मंत्रणा कर पोरस ने संधि-सँदेश भेजा था।

५

◇ ◇ ◇

सन्थागार में गान्धार-राज आम्भी चिन्तित मुद्रा में सिंहासन पर बैठा था। गान्धार-गण-परिषद का एक विशेषाधिवेशन संयोजित किया गया था। तक्षशिला पर युद्ध की कुरूपता प्रकट होने को थी। आम्भी के वामपार्श्व में महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त बैठे हुए थे। गण-परिषद् के लगभग सभी सदस्य गूढ़-चिंतना की अवश आकुल आकृतियों सहित बैठे थे।

समक्ष ही एक उच्चासन पर पोरस का राजदूत अवस्थित था। वह सतर्क भाव से आम्भी पर दृष्टिपात करता तब आचार्य विष्णुगुप्त पर और तदनन्तर एक-एक कर गण-परिषद के प्रत्येक सदस्य की मुद्राओं को निहारता था।

सन्थागार में पूर्णतः शान्ति विराज रही थी। मृत्यु की-सी विवश उदासी छायी हुई थी। दौवारिक व प्रहरियों के पग-चालन की ध्वनियाँ भी शांत स्थिर हो रही थीं। प्रतीत हो रहा था पोरस की विजय-वायु एवं तक्षशिला के महत् साम्राज्य के शोक-संताप की निरीह उच्छ्वासों की तीक्ष्णता एक साथ ही संथागार में भर रही थी।

तभी गण-संवाहक ने खड़े होकर प्रारम्भ किया—"हम चाहते हैं

कि महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त आपत्कालीन परिस्थिति पर कुछ प्रकाश डालें ।"

"क्या आपत्काल में परिस्थितियों पर प्रकाश डालने का समय भी शेष रह जाता है भद्रजन !" कठिनाई से खड़े होते हुए एवं गण-संवाहक को सम्बोधित कर आचार्य विष्णुगुप्त ने व्यक्त किया ।

"हाँ, उसी रूप में जिस रूप में शत्रु-सेना को राजधानी के बाह्य प्राचीरों पर तूर्य-घोष का निनाद करते सुनकर महामात्य ने गण-परिषद् बुलाने की आवश्यकता का अनुभव किया है । क्या मैं यह ज्ञात कर सकता हूँ कि गान्धार-राज आम्भी के महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त सदृश कुशल प्रबंधक किस प्रकार अपने गुप्तचरो से यह भी न जान सके कि पोरस सरीखा योद्धा ससैन्य तक्षशिला तक आ पहुँचा···?"

गण-परिषद् में निस्तब्धता छायी हुयी थी । नतमस्तक आम्भी की आकृति में पराजय एवं अपमान की विभीषिका नर्तन कर रही थी । महामात्य विष्णुगुप्त भी अपने शासन-प्रबन्ध की वैसी असफलता पर स्वत: अपमान एव तिरस्कार का अनुभव कर रहे थे ।

"क्या यह ऐतिहासिक घटना गुप्त आयोजन अथवा दुरभिसन्धि की संज्ञा नही प्राप्त कर सकती ?" गण-संवाहक ने उच्च स्वर में प्रकट किया ।

"महामात्य उत्तर दें",—"महामात्य स्पष्ट करें—" अनेक ओर से स्वर गूँज गये ।

तत्काल गांधार-राज आम्भी की मुख-मुद्रायें परिवर्तित हुयी । शांत किंतु प्रकम्पित स्वर में आम्भी ने प्रारम्भ किया—"मेरा अनुरोध है कि इस समय दोषारोपण व तर्क-वितर्क में समय न नष्ट किया जाय । महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त पर दोषारोपण का अर्थ है आम्भी को दोषी ठहराना···।"

सभा में शांति की अचेतना घिर आयी । उस समय सन्थागार

दर्शकों व श्रोताओं से भरा हुआ था । उस आपत्काल में तक्षशिला के श्रेष्ठिजन, विशिष्ट नागरिक, सामन्त आदि भी सन्थागार में विशेष रूप से उपस्थित थे।

तभी राजदूत ने स्थिर व शांत मुद्रा में, खड़े होकर प्रारम्भ किया—"महाराजाधिराज कैकयराज के प्रस्ताव को अन्यथा न समझें गाँधाररराज ! उसमें किसी प्रकार का पद-दलन, किसी प्रकार स्वतन्त्रता का अपहरण, किसी प्रकार गांधार-जन-पद की प्रतिष्ठा पर आघात नहीं है तक्षशिलाधिपति ! कैकयराज समान-स्तरीय संधि के इच्छुक हैं। वे मैत्री-सम्वंध स्थापित करना चाहते हैं। वे···"

"अपनी बलशाली-सैन्य-शक्ति की टंकार पर सन्धि-प्रस्ताव, मैत्री-सम्बन्ध-स्थापना की कामना ? हः, कैसा परिहास होगा तक्षशिला का, गान्धार-जन-पद का, गान्धार-राज आम्भी का ?" गण-संवाहक ने तेजस्विता सहित प्रकट किया।

राज-सभा मौन थी।

"गान्धार-जन-पद ने स्वयं सैन्य-शक्ति की टंकार पर अपने पार्श्ववर्ती राज्यों पर अनेक बार सैनिक अभियान किये हैं और राज्यों की स्वतन्त्रता का दलन किया है। कैकय-राज ऐसा नहीं चाहते। कदापि नहीं चाहते। ······"राजदूत ने पूर्णतः शालीन-भाव से प्रकट किया।

"महत्वाकांक्षायें, विजयाकांक्षायें, राज्य विस्तार की लालसा—भारत के सशक्त षोडश जन-पदों का विनाश करके भी शान्त नहीं हुई हैं। युद्ध की वह्नि के प्रज्वलन में सदा-सर्वदा ही धन-जन होम होते रहे हैं—होंगे। आन्तरिक विग्रह के अतिरिक्त विदेशी आक्रान्ताओं ने भी अधिक नहीं तो पश्चिमोत्तर सीमा को दहला दिया है। किन्तु आज भी······", गण-संवाहक कहते जा रहे थे।

"समय तर्क-वितर्क का नहीं निर्णय का है। गान्धारराज एवं

गान्धार-गण-परिषद् से मेरा अनुरोध है कि वे मुझे तत्काल निर्णयात्मक उत्तर दें," राजदूत कहते हुए बैठ गया ।

"युद्ध से भय—गान्धार ने यह कभी नहीं सीखा।"—"युद्ध होना चाहिए"—"युद्ध होगा।"—"युद्ध से हम नहीं डरते।"—"पराजय का हमें सोच नहीं।" —"यों नम जाने से वीरगति पाना अधिक उत्तम है।" सन्थागार में चतुर्दिक गगन-वेधी स्वर गरजते रहे।

तक्षशिला के नागरिकों की वह उत्तेजना स्वाभाविक थी। वाक्‌जाल के अतिरिक्त जनता-जनार्दन को प्रतीत हो रहा था कि गान्धार-जन-पद की मर्यादा का हनन व स्वतन्त्रता का अपहरण हो रहा है।

विषाद की म्लान आवृत्ति ने तक्षशिला को घेर लिया। शोकाकुल जन-जन पराधीनता के त्रास की कल्पना कर मनस्ताप को पी रहे थे। सर्वत्र चर्चा थी—"महाराज ने बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया है।"—"महाराज ने तक्षशिला के रमणीय चत्वरों को विनाश से बचा लिया।" —"महाराज ने दूरदर्शिता से कार्य किया है। पोरस की सेना को इन स्थितियों में परास्त करना असम्भव था।"—"कुछ भी होता यों पराजय स्वीकार कर लेना कायरता है।"—"गान्धार ने सदैव ही बर्बर शत्रु का समूलोच्छेदन किया है।"—"गान्धार ने कभी ईरानियों को यों प्रवेश नहीं पाने दिया।"—"गान्धार कुरुष के समक्ष यों नहीं झुका।"—"गान्धार से लड़ने पर ही कुरुष भागा था।"—"देरियस ने भले ही पश्चिमी गान्धार एव पुष्करावती को पदाक्रान्त किया हो किन्तु तक्षशिला से वह सदैव ही भयातुर बना रहा।"

तद्वत प्रतिक्रियाओं के आक्रोश से प्रसन्न कैकय राजदूत आम्भी की ओर से सन्धि-सूचना लेकर लौट पड़ा।

६

◇ ◇ ◇

आज तक्षशिला महान् पोरस के स्वागत की तैयारी कर रहा था। पोरस के सैन्याधिकारियों ने तक्षशिला का नागरिक-शासन अपने अधिकार में कर लिया था। वे ही अपने महाराज के स्वागत की व्यवस्था कर रहे थे। तक्षशिला के श्रेष्ठि-चत्वर, द्वार, हट्ट पुष्प वन्दनवारों से सजाये गये थे। कैकयराज पोरस के अभिनन्दनार्थ स्थल-स्थल पर हरित द्वारों का निर्माण किया गया था जिनमें विजयी पोरस के अभ्यर्थनार्थ विभिन्न वाक्यांश अंकित किये गये थे। सर्वत्र कैकय-सैनिकों के पहरे लगे हुए थे तथा मुख्य स्थानों पर सैनिकों की रक्षा-पंक्तियां कार्य-रत थीं।

मध्याह्न से कुछ पूर्व विजयी पोरस की शोभा-यात्रा तक्षशिला के चत्वरों की ओर बढ़ी। गजारूढ़ पोरस अपनी सहज-सरल स्मित सहित नागरिकों को अभिवादन करते जा रहे थे। यों गान्धार-जनपद एवं तक्षशिला के उस अपकर्ष को देखकर एवं अन्तराल में महती कुंठा को दाबकर भी तक्षशिला के नागरिक पोरस के दर्शन के लिये लालायित थे। पोरस के शौर्य-पराक्रम की सर्वत्र चर्चा थी। पोरस का व्यक्तित्व अत्यधिक आकर्षक था। वह एक हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ योद्धा थे और अपने उस अलंकृत वेश में जब वह मत्त-गयंद पर झूमते हुए तक्षशिला के हट्टों में घूमे तो

गज के ऊपर भी उसकी साढ़े छै फीट की ऊँचाई के समक्ष तक्षशिला के नागरिक नत-मस्तक हो गये।

उस आनन्दोल्लास में तक्षशिला के नागरिकों की उदासी कुछ शान्त हुई और उन्होंने उस राष्ट्रीय अपमान को मौन होकर पी लिया।

महान पोरस की शोभा-यात्रा के जुलूस में विजय-पताकायें फहराते हुए पोरस की पदाति-सेना एवं अश्व-सेना चल रही थी। इनके पीछे तक्षशिला के निःशस्त्र सैनिक, श्रेणि-बद्ध हो, पैदल चल रहे थे। महाराज आम्भी की सेना के पश्चात् कैकय की रथ-सेना थी और उनके पश्चात् गजारूढ़ विजयोन्मत्त पोरस।

पोरस के गज के पीछे पोरस की गजसेना चल रही थी। तक्षशिला के मुख्य हट्टों व चत्वरों में वह जुलूस घंटों घूमता रहा। महान् पोरस की उस विजय-वाहिनी सैन्य-शक्ति को देखकर तक्षशिला के नागरिकों में सराहना के भाव उमड़ रहे थे।

नगर में विचित्र कोलाहल भर रहा था। नगर के बाह्य तोरणों पर दुंदुभि-घोष एवं कैकयराज की जय—महाराजाधिराज पोरस की जयनाद के तुमुल-घोष दिक्दिगंत में गूंज रहे थे। नगर के अन्तर्भाग में भी स्थान-स्थान पर तूर्य व अन्य वाद्यों के द्वारा विजय-श्री का स्वागत किया जा रहा था। सेनानी, स्वतः भाँति-भाँति के वाद्यों व जयघोषों के द्वारा आकाश को निनादित कर रहे थे।

कैकय-सैनिकों ने प्रहरियों का कार्य सम्पन्न किया जो अश्वों पर घूम-घूम कर व्यवस्था स्थापित कर रहे थे।

तक्षशिला की स्त्रियाँ भाँति-भाँति के वस्त्राभूषणों एवं अलंकरणों से सुसज्जित हो अपने-अपने प्रवासों के बाह्य अलिंदों से झांक रही थीं। वह सब व्यस्तता, तूर्य-नाद, करतल-ध्वनियां सुन-सुनकर बालक किलकारियां भर रहे थे।

सर्वत्र भ्रमण कर पोरस महान्' की शोभा-यात्रा का जुलूस

तक्षशिला के अधिपति आम्भी के महाराज-प्रासाद पहुँचा। प्रासाद के बाह्य तोरणों की सजावट अभूतपूर्व थी। पुष्पलतायें, वन्दनवारें, स्वर्ण-रजत तार से खचित स्तम्भों की अकथनीय शोभा से वातावरण मुखरित हो रहा था।

प्रासाद के बाह्य भाग में सिंहद्वार से मिले हुए अस्थानागार के विशाल भवन के सम्मुख जो विस्तृत हरित-उद्यान था उस पर एक विशाल पंडाल बनाया गया था। उसके अष्टकोणों को, कदली-स्तम्भों, मयूरपंखों, हरित डालों, पुष्प-वन्दनवारों, आम्र-मंजरियों में लिपटी लता-गुल्मों आदि से सजाया गया था। मंडप के बीचोंबीच एक ऊँची वेदी बनायी गयी थी जिस पर एक स्वर्ण-सिंहासन अवस्थित किया गया था।

महान् पोरस की शोभा-यात्रा का जुलूस यहीं समाप्त कर दिया गया और विजेता पोरस को वेदी के ऊपर रखे स्वर्णासन पर बैठाया गया। जयनाद से दिशायें गूँज उठीं।

"कैकयाधिपति की जय—कैकयराज पोरस की जय—तक्षशिला-धिपति महाराज आम्भी की जय—"

पोरस के ठीक सामने उसी प्रकार के उच्चासन पर आम्भी अव-तिष्ठित था। आस-पास कैकय राज्य के शासनाधिकारी, सैन्याधिकारी, विराज रहे थे। उनसे मिले-जुले गान्धार-गण-परिषद् के गण-संवाहक, सदस्य, श्रेष्ठिजन, विशिष्ट गान्धार-गण-राज्य के नागरिक, सामन्त आदि बैठे हुए थे।

पोरस के सम्मान में महामात्य एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय के प्रधानाचार्य विष्णुगुप्त ने एक संक्षिप्त भाषण में विजयी पोरस का अभिनन्दन किया।

अपमान के अवसाद एवं ग्लानि की तीक्ष्णता को अन्तर्मन में दाब कर आम्भी उस स्थान पर बैठा रहा। उसने, चतुर्दिक, अपनी दृष्टि दौड़ायी। कैकय राज्य के सबल सेनानी रक्षा-भार लिये हुए थे। वह

नत-मस्तक हो, उदास भाव से अपने स्वर्णासन पर बैठा रहा। कुछ समय के अनन्तर आम्भी ने पुनर्वार उपस्थित समुदाय पर दृष्टिपात किया। उसने वहाँ एकत्र तक्षशिला के अनगिन नागरिकों की स्वतन्त्र-आत्मा में प्रकटी निरीहता को देखा। वह तड़पकर रह गया और उसके नेत्र जो घूमे तो उसने देखा पोरस का भव्य व्यक्तित्व—जो उस भरे हुए पंडाल के बीचोंबीच वेदी पर खड़े होकर भाषण कर रहा था—

"प्रिय गान्धारराज, गण-परिषद् के विशिष्ट सदस्यो, महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त एवं तक्षशिला के नागरिको !

"इस सैनिक अभियान के प्रतिफल गान्धार-जन-पद पर मेरे अधिकार होने के यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि मैंने गान्धार-जन-पद अथवा तक्षशिला की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया है। गान्धार-जन-पद की केन्द्रस्थली तक्षशिला की सत्ता जिस प्रकार थी उसी प्रकार आज—इस क्षण भी—अक्षुण्ण है।

"मेरा मन्तव्य गान्धार-जन-पद को कैकय राज्य में सम्मिलित करना कदापि नहीं था।"

"हमारे इस विशाल आर्यावर्त को, विशेषतः पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तों को विदेशी आक्रमणों का सदैव भय बना रहता है और वहीं शासन की सर्वाधिक निर्बलता भी विद्यमान है। हम महान् शक्तिशाली हैं। किन्तु हमारी शक्ति विभाजित हो रही है। मैं एकसूत्रीय शासन का पक्षपाती हूँ। मेरी एकसूत्रीय शासन-योजना का अर्थ यह कदापि नहीं कि मैं दिग्विजय के स्वप्नलोक में हूँ अपितु संगठन-शक्ति में आस्था स्थापित करना ही मेरा एकमात्र ध्येय है।"

"खेद है कि मुझे तक्षशिला पर अपनी सैन्य-शक्ति का प्रदर्शन करना पड़ा। मैंने गान्धारराज आम्भी को अनेक बार एकसूत्रीय शासन-योजना को समझाने के लिये दूत भेजे किन्तु इन्होंने उसका सन्तोषप्रद उत्तर कदापि नहीं दिया प्रत्युत तक्षशिला की स्वतन्त्रता के अपहरण की

वार्ता कर इन्होंने ही नहीं अपितु मुझे दुःख है कि आपकी गण-परिषद् ने भी मेरी उस भावना का उचित सम्मान नहीं किया।

"किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि तक्षशिला आकर मैंने कैकय एवं गान्धार में मैत्री-सम्बन्धों की स्थापना कर एक सुकार्य ही किया है।

"इतिहास यह कब भुला सकता है कि गान्धार राज आम्भी एवं कैकय का राज्य-कुल एक ही है।"

करतल-ध्वनियों से वह विशाल मंडप गूँज उठा।

"कैकयराज पोरस की जय—गान्धारराज आम्भी की जय—कैकय-गान्धार मैत्री अमर हो।"

पोरस ने पुन: प्रारम्भ किया—

"तक्षशिला के नागरिकों की आन्तरिक भावनाओं को मैं जानता हूँ। उनके मौन अवसाद को मैंने पढ़ा है किन्तु उनके अवसाद को मैं प्रसन्नता में बदलना चाहता हूँ। मैं गान्धार-राज आम्भी का राज्य उन्हीं को लौटाता हूँ।"

पोरस का प्रत्युत्तर देने के लिये आम्भी के पास कुछ भी नहीं था। वह उसी प्रकार यथावत् मौन बैठा रहा। वहाँ की सभी औपचारिक क्रिया को आचार्य विष्णुगुप्त ने परिपूर्ण किया।

वैसे से विकल-हर्ष में पोरस की अभिनन्दन-सभा विसर्जित हुयी।

७

◇ ◇ ◇

तक्षशिला पर सैनिक-अभियान के समय पोरस का पुत्र किरात भी उसके साथ था। पोरस की भाँति किरात भी एक बलिष्ठ सामरिक योद्धा था। अत्याकर्षक, गौर वर्ण में अपने पिता के अनुरूप ही वह लम्बा था।

धनुर्धर किरात ने दीर्घकाल से अभिसार की राजकुमारी प्रत्यंगिरा के सौन्दर्य की चर्चा सुन रखी थी। प्रचलित था कि राजकुमारी प्रत्यंगिरा अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है।

चतुर्दिक पर्वतीय उपत्यकाओं से घिरा हुआ अभिसार राज्य एक प्रकार से भारत की शिखा-रूप में अवस्थित था।

दैविक सुषमा प्राप्त अभिसार की उस रमणीय सरसिज भूमि पर प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा था। उस पर्वतीय प्रदेश में सर्वत्र रूप-लावण्य की ज्योत्स्ना प्रस्फुटित होती थी। हरित-वसना भूमि-खंडों में स्थान-स्थान पर रमणीय उद्यान थे जिनमें नाना प्रकार के फल, भाँति-भाँति के पुष्प, लता-गुल्म छाये हुए थे। अंगूर-लतिकायें, सेवों के भरे उद्यान, आम्र-कानन वातावरण में द्विगुणित सौरभ बिखरते थे।

अपने एक अनन्य सखा सैन्याधिकारी भानुवर्मा के प्रोत्साहन पर

किरात अभिसार की नैसर्गिक ज्योति प्रत्यंगिरा एवं वहाँ की प्राकृतिक सुषमा के दर्शन के लिये लालायित हो उठा।

एक ओर तक्षशिला में विजय-श्री प्राप्त कर महान् पोरस ने राजगृह की ओर प्रस्थान किया दूसरी ओर भानुवर्मा तथा कुछेक अश्वरोहियों को लेकर किरात ने अभिसार की ओर प्रयाण किया।

तक्षशिला की तात्कालिक विजय-कीर्ति के कारण कैकय राजकुमार किरात जहाँ कहीं भी जाता उसका भव्य स्वागत होता था। यों अभिसार की सीमायें तक्षशिला से मिली हुयी थीं और एक प्रकार से अभिसार ठीक तक्षशिला के ऊपर था किन्तु अभिसार की ही भाँति पर्वतीय-राज्य उरश होते हुये किरात ने अभिसार की राजधानी में प्रवेश किया।

किरात, भानुवर्मा एवं अन्य सात अश्वरोही पर्वत-शिखरों को देखते, जल-प्रपातों, पुष्प-उद्यानों, अंगूर-काननों को निहारते चले जा रहे थे। उनके अश्व मन्द-पग-चाप रखते ऊँची-नीची पर्वतीय भूमि पर चल रहे थे। अपराह्न का समय था तथा संध्या होने में अभी विलम्ब था। भगवान भास्कर दिवा-ज्योति छिटका कर थकित से, पश्चिम की ओर बढ़ रहे थे। निरभ्र नीलाकाश में यत्र-तत्र पक्षियों के दर्शन हो जाते थे। उद्यानों एवं उपत्यकाओं के अन्तर्भाग से कभी-कभी किसी पक्षी का मादक स्वर प्रकट होकर वातावरण में एक थिरकन-सी प्रकट करता था, ज्यों सूने में किसी ने वीणा के तारों पर उँगलियाँ रख दीं हो।

तत्क्षण ही एक उपत्यका की किसी खोह से एक सिंह दहाड़ता हुआ प्रकट हुआ। निमिष मात्र में किरात ने तूणीर से एक बाण खींच कर सन्धान किया। किरात का बाण छूट गया।

अश्वारोहियों की एक दृष्टि में किरात के बाण छोड़ने का दृश्य समाप्त

होकर ज्योंही दूसरा चित्र सामने आया तो दिखायी दिया कि किसी निकटवर्ती उद्यान से एक अन्य बाण वायु को चीरता हुआ तथा किरात के बाण के दो खंड करता हुआ सिंह की ग्रीवा से जा लगा है। तत्काल ही दूसरा तीर झंझावात-सा सामने आया और सीधा सिंह के हृदयभाग को बेध गया और तभी एक ओर से उभरी सिंह की चीत्कार ने वातावरण में उत्तेजना भर दी।

धनुर्धारी किरात के बाण के दो खंड नहीं हुए प्रत्ययुत किरात के हृदय के ही दो खंड हो गये। विस्मयातिरेक में किरात उसी ओर देखता रहा जिधर से वे दोनों बाण आये थे और तभी अश्वों की गति उस दिशा की ओर तीव्रतर हो गयी।

पलमात्र में किरात ने पगडंडी पार की और ज्योंही वह उसके मोड़ पर जा खड़ा हुआ, पार्श्ववर्ती कानन से एक धनुर्धारिणी प्रकट हो गयी। उसकी आकृति में मुस्कान खेल रही थी। उसके ओठों पर हास्य प्रस्फुटित हो रहा था। उसके नेत्रों में शान्त-रस की स्निग्ध आभा दीपित हो रही थी।

अप्सरि रूप की परम तेजस्विता में कटि की त्रिबलि के नीचे वह बघचर्म धारण किये हुए थी। उसका वक्षस्थल भी बघचर्म से वेष्टित था। शेष समस्त अनाच्छादित देह-यष्टि में जो नारी-रूप प्रकट हो रहा था उससे स्पष्ट था कि वह अनिंद्य-सुन्दरी है। उसके सुललित केश निर्वस्त्र कंधों पर लहरा रहे थे।

तभी वह तरुणि बाला निर्भय-निर्बन्ध किरात के अश्व के सम्मुख आ खड़ी हुयी। उस समय उसकी मुखर भंगिमा में एक उद्दीप्ति थी। वह अपना वाम कर कटि पर टेके हुए थी तथा दाहिने से धनुष को भूमि पर टिकाये थी। उसकी प्रश्नात्मक मुद्रायें क्षण-क्षण में परिवर्तित हो रही थीं और किरात भूमि पर पड़े दूरस्थ सिंह को, निर्निमेष निहार रहा था। भानुवर्मा तथा अन्य अश्वारोही सैनिक कभी उस रूप, कभी किरात

और कभी सिंह को देखकर पुनः बघचर्म-धारिणी एकांत खड़ी लावण्यमयी को देखते रह जाते।

सर्वत्र नीरवता छायी हुयी थी।

अन्ततः उस किशोरी ने ही निस्तब्धता भंग की—"भद्रजन का परिचय ?"

तत्काल भानुबर्मा ने उत्तर दिया—"महान् विजेता कैकयराज पोरस-कुमार किरात···।"

"महान् विजेता कैकयराज नहीं दुष्टराज कहो···दुष्ट···।"

"बालिका सावधान !" कहते हुए एक सैनिक ने खड्ग खींच ली।

किरात ने उँगली की वर्जना से सैनिक का रोका। तब देखते-देखते अश्वारोहियों ने अपने को पचासों धनुर्धारियों से घिरा पाया।

यों, किरात अकेला ही उन सबके लिये पर्याप्त था किन्तु वह अविचल, अनिमेष कभी सिंह और कभी अपने बाण के खंडों को देखता ही जा रहा था।

"पिता जी ! आपने पहचाना ? अभी-अभी अकारण गान्धार पर सैन्य-अभियान करने वाले, महान् विजेता कैकयराज पोरस-कुमार किरात···", बालिका की आकृति में व्यंग्य की कोमल तीक्ष्णता परि-लक्षित हो रही थी।

"स्वागत ! किशोर स्वागत ! कैकय-राजकुमार ?"

किरात समझ ही न पा रहा था कि वह कैसा अभिनय है। वे कौन हैं ? किसका स्वागत है ? कौन कर रहा है ? कौन बोल रहा है ? यह वन्य-बालिका कौन है ?

भानुवर्मा सहित अश्वारोहियों की भुजायें फड़क रही थीं। वे उन वन्य-मानवों से युद्ध करने को आतुर थे। वे आपस में कुछ वार्ता, सांकेतिक भाषा में कर भी रहे थे तभी स्वर प्रकट हुआ—

"आइये, चलिये।"

और किरात यन्त्रवत् उनके साथ एक ओर चल दिया। उन धनुर्धारियों में सबसे आगे वह तरुणि-बाला, उसके पश्चात् एक वृत्त बनाकर तथा उन सभी अश्वों को घेरकर वे धनुर्धारी चल रहे थे। प्रतीत हो रहा था जैसे उस समय वे अश्वारोही उन वन्य-प्रवासियों के, अधिकांशतः बघचर्मधारियों के द्वारा बन्दी बना लिये गये हैं।

८

◇ ◇ ◇

अभिसार राज-प्रासाद में किरात को आतिथ्य ग्रहण करते हुए चार दिवस हो गये थे। अभिसार-राज ने कैकय-राजकुमार के स्वागत में नित्यप्रति रास-रंग और नृत्य-समारोहों का आयोजन किया। सम्पूर्ण दिवस मंगलगान, सङ्गीत-समारोहों एवं तुमुल-वाद्यों के ललित स्वरों से मुखरित रहते।

संगीत-गोष्ठियों के समय राजप्रासाद के अन्तर्प्रकोष्ठ अभिसार के विशिष्ट जनों से भरे होते थे। उनमें राज्यपरिषद् के सदस्य, सामन्त, श्रेष्ठिजन, अभिजात वर्गीय किशोर, सम्माननीय नागरिक इत्यादि उपस्थित रहते थे। प्रकोष्ठ के अन्तर्गवाक्षों में बैठकर राजकुलीन महिलायें भी संगीत की मधुरिम स्वर-लहरियों का पान करती थीं।

गान्धार-शैली के वास्तु-कला-विशारदों एवं शिल्पियों के द्वारा निर्मित वह भव्य प्रकोष्ठ राजपुरुषों के सुन्दर वेश, अलंकरणों, सुमधुर हास-परिहास, स्नेह-वार्ताओं से मुखरित रहता था। अभिसार-राज तिष्यदेव स्वर्ण-सिंहासन पर बैठता और उसके निकट ही दूसरे स्वर्णासन पर बैठाया जाता किरात। तिष्यदेव के समीप ही एक दूसरी स्वर्ण-पीठिका पर अपने रतिभ स्वरूप में वही रूप-बाला प्रतिष्ठापित होती थी,

जिसके बाण की तीक्ष्णता ने किरात के मन को प्रतिपल आन्दोलित कर रक्खा था। तब संगीत-सभायें प्रारम्भ हो जातीं और घंटों चला करतीं। किरात एकनिष्ठ हो संगीत की लय में लीन बना रहता किन्तु चंचल अभिसार-कुमारी के बाणों से भी तीव्र, मनहर नेत्र, मोहान्ध से, किरात पर केन्द्रित बने रहते।

उधर राज्यातिथ्य ग्रहण करने के अनन्तर भानुवर्मा तथा अन्य सैनिक अभिसार राज्य के रमणीय स्थलों, पर्वतीय कंदराओं, उच्चस्थ शिखरों के हिमाच्छादन को देखते घूमते थे। उन्हें संगीत से अधिक रुचि अभिसार के वन्य प्रदेशों के आखेट में थी।

"हम राजगृह चलेंगे अथवा यहीं जंगलों में मारे-मारे घूमेंगे", भानुवर्मा ने एक दिवस आखेट से लौटकर किरात से किंचित् सरल रोष में कहा।

"आज ही···?"

"कैकयराजकुमार अभी, सरलता से, अभिसार के आदर-सत्कार का तिरस्कार नहीं करेंगे", स्मित-हास्य सहित भानुवर्मा कह गया।

"यह तुम्हारा भ्रम है भानुवर्मा। मैं स्वयं ही चलने को उद्विग्न हो रहा हूँ।"

"कारण ?"

"अज्ञात है।"

किन्तु···?"

"अकारण ही कारण की सृष्टि हो रही है।"

"स्पष्ट कीजिये न राजकुमार ?"

"अपने इस अज्ञान को क्या स्पष्ट करूँ।"

"संस्कारों से पृथक् वह स्वाभाविक अज्ञानता पलमात्र में तिरोहित हो जाएगी राजकुमार !"

"किस प्रकार ?"

"सम्पर्कों की जटिलता से ।"

"वह अशोभनीय उच्छृङ्खलता जो मैं देख रहा हूँ, हेयतम है ।"

"क्या ?"

"सौन्दर्य की सजीवता शालीनता में है, भानुवर्मा ! उद्दंडता उसका अभिशाप है ।"

"परागमय अनुराग में उद्दंडता कैसी ? वहाँ सभी उपभोग क्षम्य हैं, देव !"

"परागमय अनुराग······?"

"हां, देव ! सरल-सहज-स्वाभाविक चेतना ।"

"वासना ही न ?"

"ऋचाओं ने उसे वासना कहकर भले ही पुकारा हो किन्तु···"

"यदि हमारे अपने ज्ञान-तन्तु कार्यशील हैं तो उनकी अनुभूति ऋचाओं से अधिक सात्विक हो सकती है, भानुवर्मा !"

"तब क्या अभिसार-यात्रा का उद्देश्य जान सकता हूँ, राजकुमार ?"

"हां, सौंदर्य-दर्शन ।"

"और ?"

"इसका अनुभव करने कि वह वास्तविक सौंदर्य है अथवा सौंदर्य का चीत्कार ।"

"क्या पाया ?"

"यही कि सौंदर्य प्राप्त करना सरल है किन्तु उसकी गरिमा का निर्वाह उतना ही कठिन···।"

"किन्तु हुआ क्या भन्ते ?"

"यही कि राजगृह लौट चलने का मार्ग अधिक स्वस्थ है ।"

भानुवर्मा मुस्कराया ।

"तो जाना चाहते हैं राजकुमार ?"

"हाँ, महाराज।"

"कैकयाधिपति, हमारे वाहीक-प्रान्तीय-जनपदों के मौर-मुकुट महान् पोरस महाराज से मेरी अभिवंदना व्यक्त करें, राजकुमार।"

"अवश्य, अवश्य। किन्तु क्या अभिसार-राज मुझे कुछ समय एकान्त मन्त्रणा का देंगे ?"

"अवश्यमेव।"

९

◇ ◇ ◇

महाराज आम्भी गम्भीर चिन्ता में स्वर्ण-पीठिका पर विराजमान थे। मन्त्रणागृह में उस समय महाराज आम्भी एवं आचार्य बीजगुप्त के अतिरिक्त कोई नहीं था।

"किन्तु कैकय के राजकुमार किरात की अभिसार-यात्रा सोद्देश्य है, आचार्य!"

"मेरी सूचनाओं के अनुसार वह उद्देश्य केवलमात्र किरात की युवावस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, महाराज!"

"पोरस अथवा पोरस का कोई भी वंशधर उस सब में विश्वास नहीं रखता, आचार्य। इन धूर्तों का यौवन, स्वभाव, कृति-प्रकृति सब कुछ अस्त्र-शस्त्रों में लक्षित है। इन्हें संहार के चीत्कार में आनन्द आता है, महामात्य! इन्हें सृजन से क्या प्रयोजन? ये तो सृजनात्मक क्रिया क्या, वार्ता के निकट भी नहीं जा सकते, आचार्य! मैं इन्हें जानता हूँ। इनकी यह एकसूत्रीय योजना कितनी बड़ी छलना थी। देख लिया, आचार्य।"

आचार्य बीजगुप्त शान्त मुद्रा में बैठे थे। उनके मस्तिष्क में राजनीतिक परिस्थितियों का जो झंझावात घिर आया था उसमें वे योंही मौनस्थ हो, सोचना चाहते थे। भले ही उनके कानों को आम्भी का वह

सम्भाषण, प्रलाप-सा लग रहा था किन्तु वे निश्चिन्त, किसी गूढ़ चिन्तना में थे।

गान्धारराज आम्भी कहते गये—"भले ही गण-संवाहक की वह वार्ता दोषारोपण की मिथ्या प्रभावना से अधिक महत्व की नहीं थी किन्तु आचार्य स्वयं एकसूत्रीय योजनायें लिये घूमते हैं। यदि आचार्य महोदय की एकसूत्रीय योजनाओं में यह सन्निध है तो मैं इस प्रकार की अभिसन्धि..."

आचार्य बीजगुप्त चौंके। ज्यों उनकी विचार-वीणा अनायास झंकृत हो उठी और तब उसमें एक विराम लग गया। "अभिसन्धि..." सुनकर आचार्य बीजगुप्त क्लेश की आवृत्ति में घिर गये। यह आम्भी कह रहे हैं। नहीं, कदापि नहीं। आम्भी का वह स्वर्णासन कह रहा है जिस पर प्रतिष्ठापित होकर भ्रान्तियों की उद्भावनायें स्व-आत्म में भी सम्भावित हो जाती हैं। वह वैसी-सी परिस्थिति है जिसमें शुभाशुभ की लक्षणा-शक्ति विनष्ट हो जाती है। स्वार्थधंता की चेतना प्रवेश पा जाती है। तब शासक को शासित का ध्यान नहीं रहता, तब उसमें अपनी आसन्दी की चिन्ता भर रह जाती है। तब वह अपने राज्य की ही नहीं विचार की सीमायें भी आर्द्रता के आक्रमण से घिरी पाता है। मन,तर्क के स्थान पर शस्त्रों का कुतर्क शक्तिशाली बन बैठता है और वही किसी स्थिति में शक्ति का निश्चित अन्त कर देता है। यदि शक्ति की शक्ति अजर-अमर होती तो आज उस आदि शक्ति, उस जगन्नियंता की शक्ति के स्थान पर किसी क्रूर मानव की शक्ति का ही साम्राज्य होता। तब शक्ति का परिवर्तन भी न होता। तब वही एक शक्ति जिसने कभी भी बाहुबल से आत्मा पर अधिकार करने की चेष्टा की होती—मानव के अस्तित्व काल से आज तक बनी होती। एक ही शासक का राज्य होता, एक ही खड्ग होता और एक ही धनुष, तूणीर-बाण।

एक पल में उतना सब विचारने के उपरान्त आचार्य बीजगुप्त का

ध्यान पुनः उसी—'अभिसन्धि' की संज्ञा पर अटक गया और उन्होंने शून्य में विजड़ित अपनी दृष्टि को ऊपर उठाया। तक्षशिलाधिपति आम्भी को देखा। अपमान, अवसाद, अवहेलना ही नहीं तिरस्कार की तिक्तता, स्वभाव की रुक्षता, ईर्ष्या, दम्भ सभी कुछ आम्भी की आकृति में तैर रहा था और तभी यथावत शालीन मुद्रा में आचार्य ने प्रारम्भ किया—"क्षमा-याचना सहित मैं महाराज से निवेदन करता हूँ कि वे परिस्थितियों का गम्भीरतापूर्वक मनन करें। प्रवाह में यों न बह जायें। भावातिरेक अनेक अवसरों पर हानिकर सिद्ध होता है। मैं ही क्यों जगतीतल का एक-एक प्राणी यह मानेगा कि तक्षशिला का, गान्धार का, महाराज का सर्वाधिक गान्धार की जनता का इससे अधिक अपमान नहीं हो सकता; किन्तु देवाधिदेव! पोरस के प्रत्युत्तर में प्रथम तो हमें अपनी सैन्य-शक्ति का ध्यान कर ही लेना चाहिए। दूसरे उस अनायास सैनिक अभियान के प्रत्युत्तर में सबल प्रत्याक्रमण के अभाव में तक्षशिला के निरीह प्राणियों का रक्तपात, विश्वविदित एवं प्रशंसनीय तक्षशिला के हट्टों-चत्वरों का विनाश, तक्षशिला के श्रेष्ठियों के स्वर्ण-रत्न भांडारों की लूट, स्त्रियों की मर्यादा-भंग; वह सब उपयुक्त था अथवा आज की यह स्थिति कि······।"

"कि गान्धारराज आम्भी की मूषिक-स्थिति······। कि तक्षशिला विश्व-विदित विश्व-विद्यालय के विश्व-विश्रुत शिक्षा-प्राप्त सैन्य-बलाधिकृतों का निःशस्त्रीकरण······कि उत्तरापथ, उत्तराखण्ड, आर्यावर्त में सर्वमान्य राजनीतिक, कूटनीतिक के अमात्य-शासन में पोरस की सैन्य-शक्ति का नदी, नाले, पर्वत, मैदान पार करते हुये—अनायास यों तक्षशिला के द्वार खटखटाना······कि आन्तरिक शासन की ऐसी ह्रास-स्थिति में अब यही श्रेयस्कर है कि पोरस द्वारा प्रदत्त अब इस शासन-सत्ता को भिक्षारूप में ग्रहण न कर इसे अपने पार्श्ववर्ती किसी निर्बल से निर्बल जनपद—ज्यों ग्लुचुकायन अथवा अद्रिज को सौंप दिया जाय······"

स्वर्णासन पर बैठे आम्भी की वाणी का स्वर तीव्रतर होता जा रहा था। उनकी प्रकृति की उत्तेजना, मनःस्थिति की उत्तेजना एवं भुजदंडों की उत्तेजना वाणी द्वारा उस एकांत कक्ष में उग्रतापूर्वक प्रसारित हो रही थी।

स्वभावतः अति गम्भीर आचार्य के स्थान पर यदि आम्भी का बालसखा, गान्धार का दंडनायक श्रुतश्रवा होता तो तत्काल कह देता, "या कठराज को ही भेंट कर देना चाहिये।"

दंडनायक श्रुतश्रवा कठराज्य के प्रति गान्धारराज आम्भी के उस गोप्यानुराग को भली प्रकार से जानता था जिसकी उत्ताल तरंगे आम्भी के अन्तराल में प्रतिपल घुमेड़ें लेती थीं। वह यह भी जानता था कि उस महान् क्षोभ-ग्लानि के साथ-साथ जो पोरस के अभियान के अनन्तर आम्भी में प्रकट हुयी थी एक और आर्द्रता भी उसके अन्तर्मन को कचोट रही थी जो पोरस के तक्षशिला में आगमन के समय ही उसको दुःख दे गयी थी और वह थी सांकल की शासक-चुनाव-प्रतियोगिता।

अस्तु, आचार्य ने विनत मुद्रा में सरल भाव-भंगिमा सहित अपने तर्क को स्पष्ट करते हुये कहा—"विदेशी आक्रमण की आशंका से समस्त उत्तरापथ ही नहीं समूचा आर्यावर्त आतंकित है। किसी के हृदय की बात तो कोई नहीं जान सकता। व्यवहार ही वस्तुस्थिति की स्पष्टता का द्योतक होता है। पोरस ने तक्षशिला की आत्मा का हनन अवश्य किया है किन्तु बाह्य रूप से उसने उसके शरीर को बचा दिया है। वह उसका प्रदर्शन मात्र है किन्तु वह चाहता तो हमारी इस स्थिति में तक्षशिला को रौंद सकता था······।"

"वह श्रेयस्कर होता आचार्य!"

"यह आत्म-सन्तोष का प्रश्न है महाराज! यों सत्ता का हस्तान्तरण एक प्राकृतिक नियम है किन्तु वस्तुतः तक्षशिला की सत्ता का हस्तान्तरण तो हुआ भी नहीं।"

"यह मन-तुष्टि की प्रवञ्चना मात्र है महामात्य। जो हो, आम्भी अभी जीवित है, आचार्य ! उसकी प्रतिहिंसा की भावना सजग हो उठी है। अब, कैकय को मैं रौंदूँगा······।" कहते हुये आम्भी ने अपनी दाहिनी मुट्ठी भींच ली।

तत्क्षण ही दौवारिक ने द्वार पर दस्तक दी।

उस गुप्त-मंत्रणागृह में गान्धारपति आम्भी एवं गांधार महामात्य आचार्य बीजगुप्त ने सतर्क होकर द्वार की ओर देखा।

"महाराज सन्थागार में भिक्षु अश्वघोष संघ सहित पधारे हैं।" दौवारिक ने विनय-सहित प्रकट किया।

एक क्षण को मन्त्रणागृह में निस्तब्धता छा गयी। आचार्य बीजगुप्त तत्काल उठ खड़े हुये। समक्ष ही आम्भी की प्रश्नात्मक मुद्रा देखकर आचार्य ने प्रारम्भ किया—"महाराज······।"

"मैं सन्थागार की ओर ही आ रहा हूँ।" कहकर आम्भी ने अपनी दृष्टि शून्य में केन्द्रित कर ली।

समस्त उत्तरापथ में महान् बौद्ध भिक्षु अश्वघोष सर्वत्र प्रसंशनीय व प्रसिद्ध थे। वे उन दिनों अभिसार-राज्य में स्थित प्रसिद्ध अशोकाराम से भारत-भ्रमण के लिये संघ-सहित निकले हुये थे। वस्तुत: राजनीतिक उथल-पुथल के साथ जो धार्मिक अनास्था घिर आयी थी उससे बौद्ध-संघारामों में विशेष चिन्ता व्याप्त हो रही थी। तभी प्रचारार्थ निकले परम तेजस्वी भिक्षु अश्वघोप को सूचना मिली कि हिंसात्मक युद्ध की विभीषिका से तक्षशिला बच गया है किंतु तब भी क्लेश की म्लान आवृत्ति से वातावरण आच्छन्न है और गांधार-राज आम्भी अत्यधिक खिन्न एवं विरागस्थिति में हो रहे हैं।

गण-परिषद के अधिवेशन के अभाव में सन्थागार में शांति छायी हुई

थी। त्याग की प्रतिमूर्ति भिक्षु अश्वघोष एक ओर प्रस्तर-पीठिका पर बैठे हुये थे तथा उनके पार्श्व में अन्य संघ-भिक्षु वृत्ताकार बैठे थे। सभी की आकृतियों में थकन की क्लांति दृष्टिगोचर हो रही थी और प्रकट हो रहा था कि सभी लम्बी यात्रा करते आ रहे हैं किंतु इस पर भी उनमें तेज व शांति की प्रतिच्छाया विद्यमान थी।

तत्काल ही वाम द्वार से आचार्य बीजगुप्त ने सन्थागार के उस भव्य सभा-भवन में प्रवेश किया। अभ्यर्थना में भिक्षु अश्वघोष सहित अन्यान्य आठों भिक्षु उठ खड़े हुये। अभिवादन-प्रत्याभिवादन के अनन्तर आचार्य बीजगुप्त भी अब भिक्षु जयघोष के निकट बैठ गये। कुशल-क्षेम के अनंतर वार्ता प्रारम्भ होने ही को थी कि अपने अंग-रक्षकों की दीर्घ-पंक्ति सहित गांधारराज आम्भी ने संथागार में प्रवेश कर भिक्षु जयघोष को नमस्कार किया।

स्वर्ण-रत्न-मंडित सिंहासन पर प्रतिष्ठापित होने के अनन्तर आम्भी ने एक दृष्टि भिक्षु अश्वघोष पर केन्द्रित की। आम्भी के नेत्रों में आर्द्रता किंतु भिक्षु अश्वघोष की मुद्राओं में शांति-संदेश परिलक्षित हो रहा था।

आचार्य बीजगुप्त, भिक्षु अश्वघोष एवं अन्य भिक्षुओं सहित अब उस पूर्वस्थान से हटकर आम्भी के सिंहासन के निकट आ विराजे थे।

"मैं गांधारराज आम्भी को उनकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता एवं शांति के हेतु बधाई देने आया हूँ।"

"भिक्षु-प्रवर! मुझे और बधाई?"

"आपको ही नहीं परम नीतिवान् आचार्य बीजगुप्त को एवं तक्षशिला की समस्त जनता को भी।"

"क्या तक्षशिला में कुछ ऐसा घटित हुआ है कि समस्त उत्तरापथ में आदरणीय, धर्ममूर्ति, भिक्षु अश्वघोष की वह सराहना का विषय बने?"

"गांधारराज! मुझे आपके उस अवसाद का आभास है जो प्रतिक्रिया रूप में आपके अन्तर्मन को आन्दोलित किये हुये है। किंतु धर्म और

समाज की रक्षार्थ आपने, महामात्य ने एवं गणपरिषद् ने जो शांति एवं अहिंसा का मार्ग अपनाया है वह निःसंदेह स्तुत्य है। आप ही नहीं इस स्थिति में प्रत्येक यह ध्यान करने को स्वभावतः विवश होता है कि उसकी प्रतिष्ठा की हानि हुई है किंतु भगवान् तथागत ने कहा है कि संसार की सभी वस्तुयें क्षणिक तथा निरंतर परिवर्तनशील हैं। जिस प्रकार सरिता-जल कभी स्थिर नहीं रहता है परन्तु किनारे पर बैठे हुये व्यक्ति को वह भ्रमवश स्थिर प्रतीत होता है। उसी प्रकार प्रतिक्षण परिवर्तनीय सांसारिक वस्तुओं एवं परिस्थितियों को मनुष्य स्थायी मान लेता है। प्राप्ति की इच्छा उपादान अर्थात् सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्ध रखने के कारण होती है। सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्ध तृष्णा के कारण होता है। तृष्णा इन्द्रियों के पूर्वाभास, पूर्वानुभव अर्थात् वेदना के कारण उत्पन्न होती है। वेदना की उत्पत्ति स्पर्श अर्थात् इन्द्रियों के सांसारिक वस्तुओं में संसर्ग के कारण होती है। स्पर्श षट् आयतन अर्थात् पंचेन्द्रियों एवं मनस के कारण होता है। अतएव राग, द्वेष एवं मोह का त्याग कर शुद्ध बुद्धि ही जीवन की यथार्थता का मूर्तिमान प्रतीक है राजन्!" परम शालीनमुद्रा में भिक्षुराज अश्वघोष ने व्यक्त किया।

"आपके सम्भाषण से कृतकृत्य हुआ भिक्षुवर किंतु दुर्बुद्धि का शमन भी कितना आवश्यकीय है, धर्मप्रकर। सर्प के विषाक्त दंशों की उपस्थिति ही भयावह होती है भिक्षुराज! सर्प-दंशों के समूलोच्छे-दन से व्यक्ति ही नहीं समूह का भय समाप्त हो जाता है। मुझे विषाद व्यतीत का नहीं चिन्ता भविष्य की है देव! समय एवं अनुकूल परिस्थि-तियों की उपलब्धि में जो विजय-पद मेरे शत्रु ने प्राप्त किया है, मैं उसकी अपनी ओर से पुनरावृत्ति की खोज में हूँ, भिक्षुराज!"

"यह प्रतिहिंसा है राजन्! ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिहिंसा मनुष्य की आत्मा व शक्ति दोनों का नाश करते हैं। इस संसार में न कोई शत्रु है न मित्र। सांसारिक व्यवहार की प्रवञ्चना ही शत्रु-मित्र की संज्ञा व्यक्त करती है

गांधारराज ! आपका अपना कर्म आपका सहयोगी है। किसी के दुष्कर्म पर खिन्न मत होइये। आपकी सम्यक् दृष्टि आपको सुख, सन्तोष व समृद्धि प्रदान करेगी तक्षशिलाधिपति।"

"भिक्षुराज ! मुझे कोई तर्क सन्तुष्ट नहीं कर सकता। मुझे चोट लगी है। मुझे उस चोट की टंकार का प्रत्युत्तर जब तक सामने से नहीं मिलेगा मेरा क्षोभ बढ़ता ही जावेगा......।"

"राजन् ! बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय—आपको वैयक्तिक अहंभाव को सर्वथा मिटाना होगा। मुझे वचन दीजिये कि मेरे मगध से लौटने तक आप अपने आक्रोश को शांत रक्खेंगे। आचार्य-प्रवर ! आप अपने महाराज को सद्बुद्धि की प्रेरणा देते रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।" भिक्षु जयघोष ने किंचित दृढ़ होकर व्यक्त किया। उनके नेत्रों में अन्तर्ज्योति दीपित हो रही थी।

"मैं चेष्टा करूँगा गुरु-श्रेष्ठ !"

"प्राणार्पण करके भी !"

"मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा भिक्षुराज !"

तदनन्तर भिक्षु जयघोष अपने आसन से तत्परतापूर्वक उठ खड़े हुये। उनके साथ ही उनके शिष्य भी उठ खड़े हुये।

"महर्षि ! आज मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।"

"राजन् ! पूर्व निश्चयानुसार मुझे तक्षशिला के श्रेष्ठ-धनिक इन्द्रदत्त के यहाँ भोजन करना है।"

गांधारराज आम्भी सहित आचार्य बीजगुप्त भी अपनी-अपनी पीठिकाओं से उठ खड़े हुये और उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भिक्षु जयघोष एवं अन्य भिक्षुओं को विदा किया।

१०

◇ ◇ ◇

उस एकान्तिक मन्त्रणागृह में अभिसार के महाराज तिष्यदेव एवं कैकय राजकुमार किरात स्वर्ण-पीठिकाओं पर बैठे थे। तिष्यदेव कुछ विचारमग्न थे तभी किरात ने प्रारम्भ किया—"सूचनाओं के आधार पर ही मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि सुदूर मकदूनिया में एक विशाल सैन्य-शक्ति, हमारे देश पर आक्रमण करने के लिये सङ्गठित की गयी है।"

"यह चर्चा मैंने भी सुनी है।"

"विषय चर्चा का नहीं चिन्ता का है। हमारी विच्छिन्न सैन्य-शक्तियों के आधार पर ईरानियों ने यत्र-तत्र विजय प्राप्त की थी। अब जैसा ज्ञात हुआ है, यूनानी उनसे अधिक वेग का प्रदर्शन कर रहे हैं। उस पर जहाँ तक हमारी सैन्य-शक्ति एवं संगठन का प्रश्न है—उसकी स्थिति पहले से भी अधिक चिन्त्य है। केवल वाहीक प्रान्त में चौबीस जनपद हैं। वे एक दूसरे के प्रति सद्भावना भी नहीं रखते··· ।"

"यही क्यों, उधर मगध चाहता है कि समूचे आर्यावर्त को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को विजित कर लें···।"

"मेरा विश्वास है कि हम उत्तरापथ के वाहीक जनपद अपने पारस्परिक द्वेष और वैमनस्य को मिटा दें तो हमारी स्थिति सर्वोच्च हो सकती है।"

"आम्भी का क्या हाल है ?" प्रश्नात्मक मुद्रा में तिष्यदेव ने प्रश्न किया ।

"कैकय उस पर कभी विश्वास नहीं कर सकता । पिताजी का यह अभियान एक विकट राजनीतिक भूल कही जा सकती है किन्तु जो हो गया उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है । कैकय और गान्धार की स्थिति तो समय एवं परिस्थितियां स्पष्ट करेंगी । किन्तु मेरा अपना यह मत है कि वे सम्बन्ध कभी लाभप्रद न होंगे । उसको छोड़िये, अभी तो कैकय के समक्ष गान्धार इतना असमर्थ है कि समक्ष सैन्य-शक्ति में वह सर नहीं उठा सकता किन्तु···", किरात के कथन में किंचित् आवेश भर रहा था।

"किन्तु कैकय राजकुमार अभिसार से क्या चाहते हैं ?"

"जिसकी अपेक्षा की जा सकती है । हमारे व्यापारिक व राजनीतिक सम्बन्ध बढ़ें । हम सैन्य-सन्धि करें । किसी भी बाह्य आक्रमण पर एक मन-प्राण से आबद्ध हो जावें ।"

"यही नहीं मैं तो राजनीतिक सम्बन्धों के अतिरिक्त सामाजिक सम्बन्धों की भी आशा करता हूँ । मैं तो···" अभिसार-पति तिष्यदेव ने कहना प्रारम्भ किया ।

इस क्षण किरात की आकृति रक्ताकृति हो गयी । उसने प्रसङ्ग की आशा तो की किन्तु इच्छा कदापि नहीं की । उसके समक्ष प्रत्यंगिरा का अनिंद्य रूप किन्तु अल्हड़ यौवन की कलुषमय आकृतियाँ घिर आयीं। जिस स्पष्टता से प्रथम परिचय में ही, प्रत्यंगिरा ने लास-विलास प्रकट करते हुए किरात के समक्ष आत्मार्पण की रेखायें खींची थीं वे किरात को एक पल को भी रुचिकर नहीं प्रतीत हुयी थीं । अपेक्षाकृत उसने यों ही मान लिया था कि प्रत्यंगिरा का रीति-व्यवहार कलुषमय है। उसे लग रहा था वह नैसर्गिक सौन्दर्य जब नारी को मिलता है तो उसके संरक्षण के लिये उसमें वैसी ही तीव्र बुद्धि भी होनी ही चाहिये । उसे लग रहा था कि नारी की आसक्ति इतनी चपल, इतनी सरल क्यों होती

--ए। वह ध्यान कर रहा था नारी-रूप का सौन्दर्य त्वचा की स्निग्धता अथवा आकृति की अभिव्यक्तियों में नहीं, व्यवहार, शील, संयम की गहनता में है। आचरण की सात्त्विकता में है—मान्यताओं की श्रेष्ठता में है। अस्तु, अपने समय की सर्वश्रेष्ठ रूपवती प्रत्यंगिरा उसे अपनी आस्थाओं में अपनी कसौटी पर अत्यन्त कुरूपा प्रतीत हो रही थी।

क्षण भर में इतना सब ध्यान कर ज्योंही किरात ने अपने नेत्र तिष्यदेव पर स्थिर किये और तिष्यदेव ने आगे कहने के लिये अपने ओठ खोले कि समक्ष रूप-लावण्य की प्रतिमा प्रत्यंगिरा ने मन्त्रणागृह में प्रवेश किया। उसके ओठों पर मुस्कान की उद्दाम रेखायें खिची हुयी थीं। उसके नेत्रों से स्निग्ध हास प्रकट हो रहा था। उसकी आकृति की तेजस्विता में ज्यों किरात की दृष्टि न ठहर सकी और उसने अपने नेत्र भूमि पर केन्द्रित कर लिये।

प्रत्यंगिरा के अंग-प्रत्यंगों की चंचल गति एक पल को ठिठक गयी और उसकी आकृति में प्रश्न-चिह्न परिलक्षित हो गया। तभी तिष्यदेव ने प्रकट किया—"बैठो प्रत्यंगिरा! मैंने तुम्हारा वह प्रस्ताव अभी कैकय-राजकुमार से व्यक्त नहीं किया है।"

जैसे प्रतीत हुआ कि प्रत्यंगिरा की मुद्रायें कह रही हैं—"व्यक्त कर दीजिये पितृव्य!"

तत्क्षण ही तिष्यदेव ने कहा—"कैकय-राजकुमार! मैं चाहता हूँ कि आपको एवं प्रत्यंगिरा को परिणय-सूत्र में आबद्ध कर दूं।"

प्रत्यंगिरा की आकृति में प्रसन्नता किंतु किरात की आकृति में आर्द्रता झलक आयी।

तिष्यदेव व प्रत्यंगिरा दोनों ही उत्तर की प्रतीक्षा में एकाग्र हो गये साथ ही किरात भी। वह ध्यान कर रहा था तत्काल स्पष्ट उत्तर दे देवे; किंतु मेरा नकारात्मक उत्तर मेरे कार्य को हानि पहुँचा सकता है। जिस राजनीतिक मन्तव्य को लेकर मैंने अभिसार की यात्रा की है वह

इस कारण ही असफल हो सकता है। अतएव उसने प्रकट किया—"स्वयंवरण की अनुमति मुझे तो कम से कम नहीं है राजन् ! मुझे पिता से सहमति प्राप्त करनी होगी।"

प्रत्यंगिरा की भंगिमायें पल मात्र में परिवर्तित हो गयीं। हास की चेष्टायें रोषमय हो गयीं। उसके उन विशाल नेत्रों में ज्वलन प्रकट हो आया। उसकी भृकुटियों में आवेश खिंच आया और वह निर्वाक् मन्त्रणा-गृह से चली गयी।

"तब ?" तिष्यदेव ने प्रश्न किया।

"मैं तत्सम्बन्धी उत्तर राजगृह से दे सकूँगा।"

"अवश्य ?"

"निश्चयेन।"

"तथा अस्तु। हाँ, जहाँ तक अभिसार तथा कैकय के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रश्न है, राजकुमार, आप मेरी ओर से अपने पिता को आश्वासन दे देवें कि अभिसार का एक-एक सैनिक कैकय के आदेश पर होम हो जावेगा।"

"धन्यवाद ! मैं कृतकृत्य हुआ अभिसारराज ! मैं पिताजी से अवश्य, इन्हीं शब्दों में कहूँगा।"

तक्षशिला के दक्षिण-पूर्व पोरस के दो राज्य थे। इनमें से एक बड़े पोरस का राज्य तथा दूसरा छोटे पोरस का राज्य कहलाता था। बड़े पोरस के राज्य की सीमायें वितस्ता तथा चेनाव नदियों के बीच में स्थित थीं तथा छोटे पोरस की चेनाव तथा रावी नदियों के मध्य थीं। छोटा पोरस—पोरस का भतीजा था।

अभिसार से सन्धि-चर्चा कर किरात अपने भाई—छोटे पोरस—की सीमाओं की ओर बढ़ गया।

११

◇ ◇ ◇

कलकल-निनादिनी वितस्ता की तरंगित लहरों पर मन्द प्रकाश की स्वर्णाभ किरणें नर्तन कर रही थीं। अंशुमाली की अरुण-श्वेत रश्मियों का स्पर्श कर वितस्ता का अगम नीर मुखरित हो रहा था। तीर विहंस उठे थे। सांध्य-कालीन मन्द समीर की गति से जल में जो कंपन प्रकट हो रहा था उसमें संगीत की-सी मन्द ध्वनियाँ ध्वनित होकर दिशाओं में शान्त गुंजन भर रही थीं। एक किनारे पक्षियों का एक दल मौन बैठा था। इस समय अनायास ही पक्षियों ने अपनी-अपनी चोंच जल से बाहर निकाल ली थी और उनकी दृष्टियाँ, अनिमेष पश्चिम की ओर स्थिर हो गयी थीं। उनकी आकृतियों से उभरते भोलेपन की अस्थिरता को देखकर प्रतीत होता था, वे जन-कोलाहल से किंचित भयातुर हो उठे हैं। तभी उनके भ्रमित नेत्रों से प्रकट हुआ कि वे रजनी की घोर तृषा को शान्त कर अब उड़ जाना चाहते हैं। क्योंकि सुदूर पश्चिम से आते हुए घंटों का सरल घोष यह व्यक्त कर रहा था कि प्रकृति ही नहीं कृति भी अस्थिर हो रही है।

अब तक पक्षियों का दल उड़ गया था और उनका स्थान राजगृह के सुललित नर-नारियों ने ग्रहण कर लिया था। देखते-देखते स्नानार्थियों के

दल के दल किनारे पर घिर आये। वितस्ता के तीर पर बने श्वेत संग-मर्मर के घाट राजगृह के नागरिकों से भर गये। संध्या के उस मुकलित वातावरण में आगमन-प्रत्यागमन का जो क्रम चला तो प्रतीत हुआ कि वितस्ता के किनारे कोई वार्षिक मेला लग रहा है।

घाट से थोड़ा हटकर एक विशाल शिव-मन्दिर था। मंदिर की बाह्य भव्यता को देखकर प्रकट होता था कि राजगृह-वासी न केवल धार्मिक ही हैं अपितु वास्तु कला के भी विशिष्ट ज्ञाता हैं। उनके द्वारा विरचित भूरे रंग के पत्थर का वह विशाल देवालय एक दुर्ग सदृश प्रतीत होता था। तीन ओर पत्थर की ऊँची-ऊँची बाह्य प्राचीरों से घिरा मंदिर थोड़ी-थोड़ी देर में घंटे के तुमुल नाद से वायु में एक कंपन उत्पन्न करता था और तब वह स्वर शांत हो जाता था। सामने की ओर पश्चिम मुख एक भव्य प्रवेश-द्वार था जो दर्शनार्थियों की व्यस्तता से हर समय चैतन्य बना रहता था।

इस समय शनैः-शनैः अन्धियारा घिरता आ रहा था तथा शिवालय में संध्या-वन्दन एवं आरती का प्रवन्ध प्रारम्भ हो गया था। धार पर जल-क्रीड़ा करने वाले नागरिक अब शिव-मंदिर की ओर बढ़ने लगे। कुछेक युगल, स्नेह-अनुराग की धूम्र गन्ध-सी पावन आस्था लिए, आरती-वन्दन की-सी पवित्र अर्चना लिए शिवालय की ओर बढ़ रहे थे। सम्भवतः वे शिव-मूर्ति के समक्ष प्रार्थना करना चाहते थे कि उनकी एकनिष्ठा, उनका सात्विक प्रेम, उनकी साधना, उनकी आराधना मंगलमय हो, चिर-स्थायी हो, चिरन्तन हो, सत्य हो, शिव हो, सुन्दर हो।

तभी बौद्ध-भिक्षुओं का एक संघ शिवालय के सामने से निकला।

"बुद्धं शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि···"

उनमें के एक-दो साधु गुनगुनाते हुए आगे बढ़ रहे थे। अनायास ही

शिवालय से कतिपय पूजार्थी सिंहद्वार से बाहर निकले और उन्होंने भिक्षुओं को अनायास पीटना प्रारम्भ कर दिया। भिक्षु निरन्तर कहते गये :

"बुद्धं शरणं गच्छामि
धर्मं शरणं·········"

और वे उद्दंड उन्हें पीटते ही रहे। तत्काल ही वहाँ नागरिकों की एक महती भीड़ एकत्र हो गई। लगभग सभी उपस्थित व्यक्तियों ने भिक्षुओं को नमस्कार कर उनकी रक्षा की। उस पीटने वाले दल का एक व्यक्ति कहने लगा—"बचाइये ! बचाइये ! इनकी भली प्रकार रक्षा कीजिए। किन्तु आप जानते हैं ये भिक्षु क्या कहते घूमते हैं। कल ही एक स्थान पर यह···यह (एक भिक्षु की ओर संकेत करते हुए) कह रहा था—धर्म का नाश हो रहा है। विधर्म की उन्नति हो रही है। अनाचार बढ़ रहा है। पश्चिम से एक शक्ति इस ओर बढ़ रही है। महान् हिंसा एवं संहार का नग्न ताण्डव होने को है······बोलिये। बताइये। ये अपना धर्म, धर्म समझते हैं। दूसरे के धर्म को विधर्म, अधर्म समझते हैं। ये सर्वनाश के स्वप्न देखते हैं। ये शाप देते हैं। इनका स्वतः नाश हो जावेगा। ये स्वयं विधर्मी हैं। ये वेदों का खण्डन करते हैं। ये ब्राह्मणों के नाश की कामना करते हैं। ये वेद-ऋचाओं को मिथ्या कहते हैं। ये हमारे विनाश के स्वप्न देखते हैं। इनका नाश हो जावेगा। इनका नाश हो। इनका नाश हो······।" हाँफते हुये वह व्यक्ति उत्तेजना में कहता गया।

इस प्रकार की घटना में कुछ विशेष नवीनता नहीं प्रतीत हो रहा थी क्योंकि वैसी घटनायें नित्यप्रति होती रहती थीं। इधर वैसा वातावरण ही बनता जा रहा था कि यत्र-तत्र बौद्ध-भिक्षुओं में एवं वैदिक-ब्राह्मणों में संघर्ष हो जाते थे। बेचारे अहिंसावादी सरल भिक्षु बल-प्रयोग के प्रत्युत्तर में शान्त हो जाते थे। किन्तु इस समय जो विशेष चिन्ता का विषय था वह थी भिक्षुओं की भविष्यवाणी—'पश्चिम से

'एक शक्ति इस ओर बढ़ रही है । महान् हिंसा एवं संहार का नग्न तांडव होने को है ।'

तभी उपस्थित भिक्षुओं को पूर्णतः शांत देखकर एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—"भिक्षुराज ! इस कथन में क्या सत्यता है कि पश्चिम से एक शक्ति इस ओर बढ़ रही है । महान् हिंसा एवं संहार का नग्न ताण्डव होने को है···।"

"इस यथार्थ के स्पष्टीकरण के लिये ही हम कैकयराज पोरस से भेंट करने राजगृह आये हैं । हमें कुछ गम्भीर सूचनायें देनी हैं । हम कल प्रातःकाल उनसे मिल रहे हैं ।" भिक्षुओं में से एक ने व्यक्त किया जो सम्भवतः उनका नेतृत्व कर रहा था और जिसकी ओर ही उस पूर्व व्यक्ति ने संकेत किया था ।

"तब क्या आप उस शक्ति के सम्बन्ध में जानते हैं ? क्या कोई विदेशी···?" जन-समुदाय में से एक ने उत्कण्ठा में प्रश्न किया ।

"सब कुछ अज्ञात है । सब भविष्य के गर्भ में है···।

बुद्धं शरणं गच्छामि,

धर्मं शरणं गच्छामि,

संघं शरणं गच्छामि ।"

कहते हुए भिक्षु-दल आगे बढ़ने लगा । आक्रमणकारी दल के व्यक्ति पुनः आगे बढ़े किन्तु अन्य व्यक्तियों ने उन्हें शान्त कर लौटा दिया ।

'पश्चिम से एक शक्ति इस ओर बढ़ रही है । महान् हिंसा एवं संहार का नग्न तांडव होने को है ।'

इसकी चर्चा समस्त राजगृह में प्रसारित हो गयी । नागरिकों में एक प्रकार का आतंक-सा व्याप्त हो गया ।

१२

◇ ◇ ◇

कैकयाधिपति पोरस, महाराजप्रसाद के अन्तर्प्रकोष्ठ के मिलन-कक्ष में बैठे थे। उनके निकट महामात्य इन्द्रदत्त एवं गण-परिषद् के कतिपय विशिष्ट सदस्य भी स्वर्ण-पीठिकाओं पर बैठे हुये थे। तक्षशिला से प्रस्थान करने के अनन्तर राजकुमार किरात की कोई सूचना नहीं मिली थी अतएव कैकयाधिपति कुछ चिन्तित थे। यों उनका विश्वास था कि किरात प्रत्येक स्थिति में सुरक्षित होगा किन्तु वात्सल्य की उद्दीप्ति में मन अनेक बार अशुभ सोचने को विवश होता है। वह ममत्व, प्रियजन के प्रति अत्यधिक मोह में, सदैव अमंगलकारी संघटनाओं की ही कल्पना करता रहता है। वह सब ध्यान करने का भी एक विशेष कारण था। आम्भी पर किसी भी परिस्थिति में विश्वास करने को पोरस तत्पर न थे। वे जानते थे कि अवसाद की विडम्बना में आम्भी किसी भी क्षण प्रतिहिंसा की तीक्ष्णता को आत्मसात् कर लेगा। आम्भी के स्थान पर जो कोई भी होगा पोरस की सदाशयता को प्रवञ्चना की संज्ञा देगा।

इस समय पोरस के हृदय में यह भी धारणा स्थान प्राप्त कर रही थी कि उसे तक्षशिला पर आक्रमण ही करना चाहिये था। युद्ध की

परिणाम-स्थिति आम्भी को अधिक रुचिकर होती। तब वह अपमान के तिरस्कार के स्थान पर पराजय की विवशता में पोरस के प्रति अधिक उदारता का अनुभव करता। तब वह स्थिति अप्रतिष्ठा के स्थान पर गौरवमय पराक्रम की होती। किन्तु आम्भी ने युद्ध नहीं किया यह दोष उसका था न कि पोरस का।

पोरस इसी विचार-स्थिति में लीन बैठे थे। सम्मुख अवस्थित अन्य शासनाधिकारी मन्द हास-परिहास में लीन थे। कार्यक्रम, किसी प्रीतिशगोष्ठी का निश्चित हो रहा था। दण्डनायक यशोधर्मा महामात्य इन्द्रदत्त को प्रीति-पान के हेतु आमन्त्रित कर रहे थे। तभी अनायास दौवारिक ने सूचना दी—"बौद्ध-भिक्षुओं का एक दल महाराज से मिलने की अभिलाषा में बाह्य प्रकोष्ठ में प्रतीक्षा कर रहा है।"

"उपस्थित करो," कैकयराज ने आदेश दिया और पुनः विचारों में लीन हो गये।

अनायास—"विश्व का मानचित्र···" पोरस ने महामात्य इन्द्रदत्त को सम्बोधित कर प्रकट किया।

सभी उपस्थित जन एक पल को सोच में पड़ गये और तभी महामात्य ने कहा—"तक्षशिला विश्व-विद्यालय से प्राप्त हो सकेगा···।"

"क्या अवश्य···?"

"हाँ, सम्भवतः !"

"तत्काल आचार्य बीजगुप्त को एक पत्र भेजकर उसे प्राप्त करने का प्रबन्ध करें, महामात्य !" पोरस ने निर्देशात्मक शब्दों में व्यक्त किया।

"किन्तु···।"

"क्या शंका है ?"

"यही कि आचार्य बीजगुप्त इसे शंका की दृष्टि से देखेंगे।"

"उससे क्या?"

"और कुछ नहीं, आम्भी तक सूचना पहुँचने पर वह सोचेगा कि कैकयाधिपति विश्व-विजयोन्मुख हैं।"

"अति सुन्दर। उस स्थिति में उसे हमारा सहकारी बनना होगा।" कहकर पोरस मुस्करा दिये।

सभी उपस्थित जन मुखर हास्य में डूब गये।

समक्ष ही, बौद्ध-भिक्षुओं के दल सहित दौवारिक उपस्थित हुआ।

कैकयाधिपति पोरस ने अपने आसन से खड़े होकर उनकी अभ्यर्थना की। अन्यान्य परिषद्-सदस्य एवं शासनाधिकारियों ने भी उठकर भिक्षुओं का स्वागत किया।

उपस्थित होते ही सभी भिक्षुओं ने प्रारम्भ किया—

"बुद्धं शरणं गच्छामि"

राजकीय अधिकारियों ने अपने स्वर जोड़ दिये—

"धर्मं शरणं गच्छामि"

"संघं शरणं गच्छामि"

"विराजिये कैकेय नरेश," भिक्षु संघ के मुख्य ने व्यक्त किया।

सभी अपनी-अपनी पीठिकाओं पर बैठ गये। पोरस के सम्मुख भिक्षुओं का वह दल भी विराज गया।

"आपके दर्शनों से आप्यायित हुआ भिक्षुराज!"

"महाराज की कृपा है। आज हम आपके समक्ष एक गम्भीर प्रसंग को लेकर उपस्थित हुये हैं...।"

"मुझे उस खेदजनक घटना की सूचना मिल गयी है भिक्षुराज! मैंने आज ही राजाज्ञा प्रचारित करने का आदेश कर दिया है। महर्षि! आज से यदि पोरस की राज्य-सीमाओं में कहीं भी बौद्ध-भिक्षुओं का अपमान हुआ तो दोषी को मृत्युदण्ड प्राप्त होगा।"

"न, न! कदापि नहीं राजन्! उस राजाज्ञा को तुरन्त समाप्त कीजिये। महाराज! ये प्रश्न धार्मिक मान्यताओं एवं आस्थाओं के हैं।

इनमें राज-नियम अथवा राजाज्ञा का अंकुश जनता की अन्तरात्मा के प्रति अन्याय होगा देवाधिदेव ! वैसा बौद्ध-जगत कभी नहीं चाहेगा। वैसा कभी नहीं होना चाहिये। सद्बुद्धि के हेतु किसी अंकुश की आवश्यकता नहीं है राजन् ! वह आत्मा की पुकार है। वह मत-मतान्तरों का प्रश्न है देव ! हम अपना मत किसी पर आरोपित नहीं कर सकते। यदि हमारी अपनी मान्यताओं के लिये हमारे कुछ बन्धु हम पर बल-प्रयोग करें तो हम उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे महाराज !"

"किन्तु हमारा भी तो कुछ कर्तव्य है भिक्षु-प्रवर।"

"अवश्य, अवश्य ! आपका यह निश्चित कर्तव्य है कि आप सर्व धर्मों के समान द्रष्टा हों। आपकी आस्था कुछ भी हो, आप प्रत्येक का आदर करें। आपकी राज्य-सीमाओं में सभी मत-मतान्तर स्वातन्त्र्य-सौख्य के समान अधिकारी हों महाराज ! आराधना पर अंकुश ? क्या यह भी संभव है राजन् ? नहीं, कभी नहीं। कदापि नहीं। हम प्रेम से, सहिष्णुता से, समादर से, जन-जन में भ्रातृ-भाव की अकिंचन धारा प्रवाहित करेंगे, नरपति ! जो हमारा तिरस्कार करेंगे, हम उनका भी आदर करेंगे राजन् !"

"किन्तु इस प्रकार की उद्दण्डतायें तो साधारण नागरिक-नियमों के भी प्रतिकूल हैं भिक्षु-प्रवर !"

"अपराध और दोष की आवृत्ति का सीधा सम्बन्ध हृदय से है, राजन् ! हृदय पर कोई शासन, कोई नियम, कोई अंकुश सफल नहीं हो सकता नरेश !"

"भिक्षुराज ! क्या कह रहे हैं ? तब मानव के सब नियम, समस्त दण्ड-नीति व्यर्थ हैं धर्ममूर्ति। तब तो समाज का अस्तित्व ही डगमगा जायगा देव ! तब राज्य कैसे चलेगा ? तब समाज कैसे चलेगा, तब शासन कैसे चल सकेगा ? तब सर्वत्र अनियमन की विभीषिका से जीवन दुष्कर हो जावेगा भगवन्।"

"अन्य अपराधों में तथा धार्मिक आस्था से प्रतिफलित उत्तेजना में अन्तर है राजन् !"

"धार्मिक आस्थाओं की कर्कशता में भी हत्यायें सम्भावित हैं। तब वैसे हत्यारे का क्या करेंगे धर्म-प्रवर ?"

"हम उसे बुद्ध-शरण में ले जावेंगे। हम उसे धर्म-शरण में ले जावेंगे। हम उसे संघ-शरण में ले जावेंगे। राजदण्ड के अनन्तर अपराध की पुनरावृत्ति सम्भावित है राजन् ! किन्तु सदाशयता एवं सदभावना का अंकुश राजदंड से अधिक तीक्ष्ण है महाराज !"

कैकयपति पोरस एक क्षण को शान्त हो गये। उपस्थित जन भी प्रशान्त मुद्राओं में बौद्ध-भिक्षु की मोहक वाणी को सुनते रहे।

"उस राजाज्ञा को समाप्त कीजिये कैकय-नरेश !"

"कम से कम कल के अपराधियों को दण्ड तो दिया ही जावेगा भिक्षुराज।"

"उन्हें क्षमा कीजिये। उन पर कोई कठोरता न कीजिये महाराज ! हमारी सद्प्रेरणा एवं सदुपदेशों से वे स्वयं नमित होंगे राजन् !"

"धर्मान्धता क्रूर होती है भिक्षुराज।"

"क्षमा से अधिक काट क्रूरता की नहीं हो सकती, देव ! जो हो, इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर मेरी एक विशेष वार्ता का मनन कीजिये कैकय-नरेश !"

"व्यक्त कीजिये भिक्षुराज !'

"हम संघ सहित देशाटन कर रहे हैं राजन् ! हम बाख्त्री, बल्ख एवं वंक्षु नदी तक गये थे। काबुल से इतना आगे बढ़ने पर ही हमें ज्ञात हुआ था कि कोई एक विजेता अपनी विशाल सैन्य-शक्ति को लेकर ईरान की ओर बढ़ रहा है तथा···।"

"हमने भी सुना है भिक्षुराज किन्तु वह भारत तक नहीं आ सकता। गर्वोन्नत हो पोरस ने व्यक्त किया।

"वैसा ही होगा महाराज ! किन्तु बाख्त्री में यह चर्चा थी कि यदि सुदूर पश्चिम का वह विजेता ईरान की सैन्य-शक्ति को दाब लेगा तो वह भारत की ओर अवश्य बढ़ेगा।" बौद्ध भिक्षु ने प्रकट किया।

"अभी सप्त सैन्धव के आर्य जीवित हैं भिक्षुराज ! अभी पोरस की सेना अजेय है ! देव"

"उत्तरापथ के आन्तरिक विद्रोह से चिन्ता होती है राजन् ! संगठन कीजिये। सद्भावना जागृत कीजिये कैकयराज ! आप ही सर्वाधिक सबल व समर्थ हैं। शत्रु को भी मित्र बनाइये, देव !"

"बल्ख की कैसी स्थिति देखी भिक्षुराज ?"

"सैन्य-तत्परता से समस्त प्रान्त आक्रान्त है।" भारतीय सार्थवाह लौट रहे थे राजन्। भयाकुलता बढ़ रही थी।"

"भारत ईरान की सहायता करेगा महामात्य। भिक्षुराज की सूचनाओं की पुष्टि अपने प्रकार से करें। वह कौन हो सकता है ?" पोरस ने महामात्य एवं अन्य परिषद्-सदस्यों की ओर सम्बोधन कर प्रश्न किया।

"सुना है यूनान के मकदूनिया नामक स्थान में कोई 'फिलिप' राज्य करता था जिसकी अभी ही मृत्यु हुयी है और उसका पुत्र कोई सिकन्दर है, जो सत्तारूढ़ हुआ है और अपनी शैन्य-शक्ति का संवर्धन कर रहा है", गण-परिषद् के एक सदस्य ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"उससे क्या ? यह कैसे आशंका की जा रही है कि वह किसी पर आक्रमण करेगा अथवा हमारे उत्तरापथ की ओर आने वाला है", पोरस ने प्रश्नात्मक मुद्रा में कहा। आक्रमण और युद्ध के नाम पर जैसे तत्क्षण उनमें स्फुरण व्याप्त हो गया।

"सब कुछ अनुमान पर आधारित है राजन्।" भिक्षुराज ने प्रकट किया।

"हः, उत्तरापथ अभी इतना निर्बल नहीं है।"

भिक्षुराज के चले जाने के अनन्तर कैकयाधिपति पोरस मिलन-कक्ष से उठकर मन्त्रणा-गृह चले गये। भिक्षुराज के अतिरिक्त भी अनेक सूत्रों से यह ज्ञात हुआ था कि यूनान की सैन्य-शक्ति प्रबल वेग से ईरान और तब भारतवर्ष पर आक्रमण करने की तत्परता में है।

तभी अनेक गूढ़ मंत्रणाओं के अनन्तर सैन्य-शक्ति में वृद्धि करने के हेतु निर्णय किये गये। महामात्य को आदेश दिया गया कि गज एवं अश्व-सेना में अधिक योद्धा बढ़ाये जावें। पोरस की गज-सैन्य-शक्ति एवं अश्वारोहियों की कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। वे रणबाँकुरे जिधर पैठ जाते थे संहार ही संहार की चीत्कार प्रकट होती थी। पदाति सेना को भी अधिक शस्त्रों से सुसज्जित होने का निर्देश किया गया।

किरात के प्रति पोरस पुनः कुछ चिन्तित हो गये। पोरस का एकमात्र पुत्र किरात उसे अत्यधिक प्रिय था। पिता को जो सर्वाधिक प्रसन्नता तथा सौभाग्य प्राप्त होता है, वह पुत्र में अपने गुणों की सादृशता से। किरात वस्तुतः पोरस की प्रतिमूर्ति था। शारीरिक गठन, सौंदर्य, गति-विधि, रीति-व्यवहार, शब्दोच्चारण सब कुछ पोरस के अनुरूप ही था।

अन्य व्यक्ति एक-एक करके विदा हो चुके थे। महामात्य इन्द्रदत्त एवं कैकयाधिपति पोरस मंत्रणागृह में रह गये थे कि दौवारिक ने तत्परता में सूचना दी—"राजकुमार किरात कठ-जनपद में बंदी बना लिये गये हैं। उन्हें सीमा-प्रान्तों में बंदी बनाया गया है।"

"कैसे ज्ञात हुआ?" पोरस ने विचलित होकर प्रश्न किया।

"साथ का एक सैनिक किसी प्रकार बच आया है। शेष राजकुमार एवं भानुवर्मा सहित बंदीगृह में हैं", दौवारिक ने प्राप्त सूचना व्यक्त कर दी।

"महामात्य किरात को तत्काल यहाँ लाने का प्रबन्ध करें", कहते हुये पोरस उठ खड़े हुये।

१३

◇ ◇ ◇

अंग, मगध, काशी, कोसल, वृजि, मल्ल, वत्स, चेदि, पांचाल, कुरु, शूरसेन, मत्स्य, अवन्ति अश्मक, गांधार एवं कम्बोज नामक षोडस जनपदों में भारत की मूल राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, धार्मिक, शैक्षणिक धारायें केन्द्रित थीं।

इनमें कतिपय गणतन्त्र जिनमें मगध, कोशल, वृजि, मल्ल, अवन्ति एवं गान्धार अत्यधिक समृद्धिशाली जनपद थे। ये प्रत्येक जनपद एक गण-परिषद् के अधीन रहते थे। शासन के हेतु जनता द्वारा चुने हुये सदस्य राजा कहलाते थे। किन्तु अनेक जनपदों में शासक वंशक्रमानुसार भी होता था। वह राज्य उसको पैतृक-सम्पत्ति के रूप में प्राप्त होता था। उसकी राज-सभा परिषद् कहलाती थी। परिषद् के अधिवेशन-भवन-संस्थागार कहलाते थे। एक सीमित अवधि के लिये परिषद् के सदस्य का चुनाव होता था जो गण-संवाहक कहलाता था। परिषद् में सभी निर्णय सर्वसम्मति से होते थे किन्तु विवादास्पद विषय एक विचार-समिति (उद्वाहिक सभा) को निर्णय के हेतु सौंप दिये जाते थे।

परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव प्रतिज्ञा, उसके

प्रस्तुतीकरण को स्थापन एवं वाचन को ज्ञप्ति कहते थे। वाद-विवाद के अनन्तर लिये जाने वाले मत छंद कहलाते थे। छंद-दान को शलाका-ग्रहणम् कहते थे। शलाका, छंद, मत अथवा वोट लकड़ी के बने होते थे। गणपूर्ति (कोरम) एवं गणपूरक (ह्विप) कहलाता था।

इन गण-राज्यों में पृथक्-पृथक् राज्य-वंश शासन करते थे। जनपदों में परम प्रसिद्ध शिशुनाग वंश ने अनेक जनपदों को उस समय तक अपने सैन्य बल से अधिकार में कर लिया था। मैथिल एवं विदेह वंश एक राज्य-क्रान्ति में विनष्ट हो गये थे। शनैः-शनैः जनपदों के पृथक् अस्तित्व ही समाप्त होते गये। काशी राज्य को कोशल ने हड़प लिया। कलिंग मगध के अधीन हो गया। शूरसेन की मथुरा भी मगध के अधीन हो गयी। अश्मक को नंद-वंश ने समाप्त कर दिया था। मगध ने अपनी राज्य-विस्तार योजना में अनेक बार अनेक जनपदों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया था।

भारत के उत्तर-पूर्वीय जनपदों की भाँति पश्चिमोत्तर प्रान्त—जिसे वाहीक प्रांत एवं सप्त सैन्धव भी कहा जाता था—में लगभग चौबीस जनपद थे।

अश्वक राज्य काबुल नदी के उत्तर में और पंजकौर नदी की घाटी में, उद्यान सुकास्तु की घाटी में, नीसा काबुल और सिन्धु के बीच; पश्चिमी गान्धार भी काबुल और सिंध के बीच; पूर्वी गान्धार सिंधु और वितस्ता के बीच; उरशा पूर्वी गान्धार के पूर्वोत्तर; अभिसार गान्धार के ऊपर; कैकय वितस्ता और चेनाव के बीच; ग्लुचुकायन कैकय के पूर्व में; अद्रिज रावी के पहाड़ी आँचल में; कठ रावी और व्यास के बीच में; भगल कठ के दक्षिण रावी और व्यास के बीच; सौभूति वितस्ता के पूर्व; शिवि वितस्ता एवं चेनाव के संगम पर; क्षुद्रक रावी और व्यास के बीच; मालव रावी और चेनाव के संगम के उत्तर में; अम्बक चेनाव घाटी के नीचे; क्षत् चेनाव और रावी के नीचे कोण पर; शूद्र सिंध के

उत्तरी भाग में; मूषिक सिंध के मध्य भाग में; प्रोस्थ सिंधु के पश्चिम में; शाम्ब मूषिक के पार्श्ववर्ती एवं पटल गण तन्त्र सिंधु नदी के मुहाने पर थे।

इन सब में विग्रह, द्वेष, ईर्ष्या, दम्भ, मिथ्याडम्बर, अहंकार, राज्य लोभ विद्यमान थे। सभी एक-दूसरे को समाप्त कर देना चाहते थे। इनमें भी कुछेक अधिक वैभव-सम्पन्न एवं शक्तिशाली थे! कैकय, गान्धार, कठ, अभिसार इनमें विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुये थे।

अस्तु, अभिसार राज्य से विदा लेकर किरात अपने चचेरे भाई से भेंट कर पर्वतीय प्रदेशों में घूमता, उनकी रमणीयता का दर्शन करता, प्रकृति की छटा को चूमता हुआ कठ-गण-राज्य की सीमा पर आ पहुँचा।

किरात, भानुवर्मा एवं अन्य सैनिकों के अश्व पर्वतीय मन्द समीर का आनन्द लेते थिरक-थिरककर चल रहे थे। भानुवर्मा कह रहा था—"मित्रवर ! प्रत्यंगिरा के प्रणय-अनुराग का यों तिरस्कार मत करो। माना, उसने असावधानी से कार्य किया फिर भी उसकी आसक्ति प्रशंसनीय है।"

"वह निम्नकोटि की है।"

"कैसे ?"

"उसमें वासना की उद्दाम घहरन पहले व अनुराग की सात्विकता तदनन्तर है।"

"कैसे ?"

"ऐसे कि तुम मूर्ख हो।"

"फिर भी।"

"शील-सङ्कोच का तिरस्कार कर जो भी नारी पथिकों से इठला सकती है; क्षणमात्र में जिसकी अनुराग-मोहिनी अपरिचित के केश-कुन्तलों में पैठ सकती है, जो केवल स्वरूप, यौवन एवं बाह्य प्रदर्शन पर

भ्रमित हो सकती है, जो अपने अनुरागिल मोह में पात्र-कुपात्र नहीं परख सकती; उसकी नीति-रीति-व्यवहार को जानने की चेष्टा नहीं करना चाहती, वह स्वयं भी अंधकार में है और उसकी उस भृकुटि-प्रवंचना में लीन होने वाला पुरुष भी विनाशोन्मुख।…"

"किन्तु उसके किस व्यवहार से श्रीमान् रुष्ट हो गये ?"

"निहसंदेह अद्वितीय रूप-लावण्यवती प्रत्यंगिरा के उस प्रदर्शन में सरिता का-सा प्रवाह नहीं, सुमेरु की-सी दृढ़ता अपेक्षित थी।"

"तब ?"

"तिष्यदेव को मेरा नकारात्मक उत्तर राजनीतिक वातावरण पर सीधा प्रभाव डाल सकता था अन्यथा मैं तत्काल स्पष्टोक्ति द्वारा अभिसार-राजकुमारी का मानभंग करने को विवश हो जाता…"

"वैसा एक राजकुमारी के साथ अन्याय होता", तत्क्षण ही एक अपरिचित-सा स्वर गूँजा और राजकुमार किरात ने स्त्रियों की एक सैनिक टुकड़ी से अपने को घिरा पाया। ज्यों किसी आकाश-मार्ग से, अदृश्य-शक्ति ने उन पर प्रहार किया हो। निमिष मात्र में उन स्त्री-सैनिकों के पैने भाले किरात, भानुवर्मा एवं अन्य अश्वारोहियों के वक्ष को छू रहे थे।

अनायास ही भानुवर्मा अपनी उस स्थिति को देखकर मुस्करा दिया। उसको देखकर किरात से भी बिना हँसे न रहा गया। अपनी सैन्य-शिक्षा तदनन्तर भयंकर युद्ध-परिस्थिति में भी उन्होंने कभी वैसी अगति-गति का अनुभव नहीं किया था। स्त्री सैनिकों की उस तत्परता में तो जैसे उनके विजड़ित नेत्र, हतप्रभ आकृतियाँ, निरुद्देश्य, निश्चेष्ट हाथों, पार्श्व व पृष्ठ भाग में बँधे अस्त्र-शस्त्र, निर्बल, निस्सहाय हो रहे थे।

"कठ राजकुमारी प्रियम्वदा के बंधन में", एक स्वर तड़प उठा।

"कहिये कठिन पाश में", भानुवर्मा बोल पड़ा।

"चुप मूर्ख……।"

भानुवर्मा तिलमिला उठा।

"अपने अस्त्र-शस्त्र हमें समर्पित कर दो", दृढ़तापूर्वक समक्ष से कर्कश स्वर प्रकट हुआ।

"स्वीकार्य है देवियो", कहते हुये सर्वप्रथम भानुवर्मा ने, चुपचाप, अपना खड्ग, धनुष, तूणीर भूमि पर खट्-खट् करके डाल दिये।

"अनुकरण कीजिये कैकयकुमार'''आरोहियो, समर्पित कर दो अपने शस्त्र", भानुवर्मा ने मंद स्वर में प्रकट किया और मुस्कराता रहा।

"ओः कैकयकुमार हैं", पुनः एक स्वर प्रकट हुआ—"आनन्द रहेगा।"

किरात ने भी ज्यों परिहास-आनन्द की सरलता में अपने शस्त्र भूमि पर गिरा दिये।

जिस तरुणि ने अपना भाला किरात के वक्ष पर टिकाया था उसे छोड़कर उन सब पुरुष-सैनकों ने छद्म-वेश धारण किया था, यह किरात को तब ज्ञात हुआ जब वह सांकल के बंदीगृह में डाल दिया गया।

१४

◇ ◇ ◇

समिद्धार्थ के कठ-गण-तन्त्र के शासक चुने जाने के पूर्व सांकल में कठ-जन-पद के भूतपूर्व शासक जयविजय का देहावसान एक मास पूर्व ही हुआ था। तब जनप्रिय शासक जयविजय की मृत्यु पर समस्त सांकल नगरी एवं कठ-जनपद ने महान् शोक मनाया था।

कठराज जयविजय अपनी आयु के चार दशक पार कर चुके थे! अनायास पक्षाघात से जर्जर जयविजय चाहते थे कि उनके जीवन-काल में ही कठ-जनपद अपना नवीन शासक चुन ले। उनकी इस इच्छा में एक अन्य कारण भी निहित था। उनकी परम रूपवती, यौवन भारोन्नत, अस्त्र-शस्त्र-निपुण पुत्री प्रियम्वदा आयु के उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुकी थी और वे चाहते थे कि सांकल के नवीन शासक के चुनाव के साथ ही प्रियम्वदा का परिणय भी सम्पन्न कर दें।

कठ-जनपद में प्रचलित स्वयम्वर प्रथा के वे विशेष पक्षपाती नहीं थे क्योंकि अनेक अवसरों पर यह प्रतीत हुआ था कि यौवन की उद्दाम-उद्दण्ड लालसा में, इस प्रणय की तीक्ष्ण आकुलता में, अज्ञानता की अबोध जुगुप्सा में; कुलीन बालाओं ने अपने से हेय-स्तरीय पात्र का चयन कर क्षोभ, ग्लानि, असन्तोष एवं तिरस्कार का अशान्त वातावरण उत्पन्न कर दिया।

उनका मत था कि न केवल प्रणीत एवं परिणीता ही क्षणिक अथवा स्थायी सुखानुभूतियों का वरण करें अपितु उस परिणय की पावन सत्यता में समस्त वातावरण भी आनन्दोल्लास से मुखरित रहना चाहिये। उसमें अवसाद की क्षीणतम रेखा भी कभी-कभी जीवनान्तक दुःख की पीड़ा प्रकट कर देती है।

वे चाहते थे कि सांकल का भावी शासक ही प्रियम्वदा का भावी पति हो और इसी हेतु वे इधर अधिक प्रयत्नशील थे। किन्तु उसमें 'परन्तु' की आवृत्ति ने स्थान ग्रहण कर लिया था। प्रथम तो उनके स्वस्वाथ्य की क्षण-क्षण की हानि दूसरे स्वयं प्रियम्वदा में यौवन-मद की चरम उद्दीप्ति के प्रभाव ने उन्हें अधिक जर्जर कर दिया था।

किन्हीं कारणों से—जो कठराज जयविजय को मृत्यु-पर्यन्त अज्ञात रहे—वे अत्यधिक विक्षुब्ध थे। वे किसी प्रकार यह न जान सके कि उनके परम शत्रु गान्धारराज आम्भी ने किस प्रकार उनकी प्रिय पुत्री प्रियम्वदा के मन-मानस पर ऐसा गहन प्रभाव डाला है कि प्रियम्वदा उनकी भी अवहेलना करने को तत्पर है। वे यह न जान सके कि किस प्रकार प्रियम्वदा व आम्भी का साक्षात्कार हुआ। वे यह भी न जान सके कि वे कौन-से कारण थे अथवा कौन-सी परिस्थितियां थीं जिनके आवरण में इस अप्रिय अनुराग की कौतुक-लीला सम्पन्न हुयी। किन्तु वे दुःखी थे, दुखी, परम दुःखी। अपनी उस वेदना का आभास उन्होंने अनेक बार प्रियम्वदा को भी दिया किन्तु वे अपने अनुसार पुत्री को परिवर्तित न कर सके।

आम्भी एवं जयविजय की शत्रुता की कठोरता तथा आम्भी एवं प्रियम्वदा की अनुरागिता-कोमलता की चर्चा समस्त उत्तरापथ में व्याप्त होती गयी और उसी आत्मिक क्लेश के वातावरण में जयविजय का प्राणान्त हो गया।

घटनाक्रम की उस अवश आकुलता में आम्भी छटपटा कर रह गया,

जब वह दिवस दो दिशाओं से विषाद की घटायें घेर लाया। एक ओर था पोरस को आत्म-समर्पण और दूसरी ओर उसी दिवस सांकल में सौन्दर्य-प्रतियोगिता—कठ-जनपद के भावी शासक का चुनाव।

आम्भी जानता था कि कठ-जनपद कटिबद्ध है कि अपने भावी शासक के चुनाव के दिवस ही जयविजय की आन्तरिक इच्छानुसार प्रियम्वदा का परिणय भी सम्पन्न कर दे किन्तु प्रियम्वदा भी दृढ़ थी। जब उसने अपने स्वर्गीय पिता की चिन्ता नहीं की तो वह गण-परिषद् से पूर्णतः निर्भय थी! उसका कथन था कि उसके प्रणय-अनुराग में उसके पिता की शत्रुता क्यों बाधक बने! उसमें उसका क्या दोष या किसी का भी?

किन्तु उस तर्क पर वह निरुत्तर हो जाती कि आम्भी महाविलासी व कामुक है तथा उसके अनेक पत्नियाँ एवं सन्तानें हैं। उस पर वह केवल इतना कहकर मौन हो रहती—"मुझे उस सबसे कोई प्रयोजन नहीं। मुझे आम्भी चाहिये।"

तक्षशिला में स्वागत-समारोह के अनन्तर विजयी पोरस एवं राजकुमार किरात ने एक समय ही दो दिशाओं को प्रस्थान किया था। गान्धार की सीमाओं से निकल जाने के अनन्तर आम्भी को वह सूचना मिल पायी थी कि पोरस का पुत्र किरात अभिसार की ओर गया है। वह उसकी यात्रा में बाधायें उपस्थित करने की बात सोच गया। वह किरात को लोप करने की ही नहीं उसकी हत्या तक की चिन्ता कर गया किन्तु वह विवश था। किरात उसकी पहुँच के परे था। अभिसार पर उसका कोई अधिकार नहीं था। अन्य राज्यों की सीमाओं के अन्तर्गत भी वह किसी प्रकार की कुचेष्टा में सफल नहीं हो सकता था।

इसके अतिरिक्त कैकयाधिपति पोरस उत्तरापथ में आम्भी की अपेक्षा

कहीं अधिक प्रतिष्ठित व माननीय था ! आम्भी को उच्छृंखल शासक की उपाधि प्राप्त थी। तक्षशिला की वह सम्पन्नता, उसका वह वैभव, उसका वह विस्तार, उसकी वह मर्यादा, उसकी वह प्रतिष्ठा उसके पूर्वजों की ही थी। तक्षशिला का निर्माण उसके पूर्ववर्ती शासकों ने ही विशेषतः किया था।

अस्तु, अपने गुप्तचरों के द्वारा किसी प्रकार आम्भी ने किरात की गतिविधि की सूचनायें, समय-समय पर ज्ञात की थीं। कठ-जनपद पर नहीं केवलमात्र सांकल-राजकुमारी प्रियम्वदा पर उसका इतना प्रभाव अवश्य था कि वह अपनी स्वेच्छाचारिता की पूर्ति के हेतु, उस पर—प्रियम्वदा पर—वैसे निर्देश आरोपित कर सके और उसी आधार पर आम्भी के गुप्तचरों एवं प्रियम्वदा ने मिलकर सांकल के कतिपय सैनिकों की सहायता से किरात को उस स्थिति में बन्दी बनाया।

किरात एवं उसके रक्षकों को सांकल की उपत्यकाओं में बन्दी बनाये जाने की सूचना जब अभिसार पहुँची तो तिष्यदेव आवेश में भर गया। वह तत्काल सांकल पर सैनिक-अभिमान की बात सोच गया।

प्रत्यंगिरा को जब यह ज्ञात हुआ कि किरात को बन्दी बनाने की उस क्रिया को सांकल-कुमारी प्रियंम्वदा ने परिपूर्ण किया है तो वह किरकिरा उठी। उसके रोम-रोम में प्रतिरोष भर गया।

१५

◇ ◇ ◇

विपन्नावर्तित किरात सांकल के बन्दी-गृह में भानुवर्मा की मनोरञ्जक वार्ता को अप्रिय मानकर, मौन-सा भूमि पर बैठ था। प्रियम्वदा के विशेष निर्देशों पर कैकय-राजकुमार को बैठने के लिये आसन तक नहीं दिया गया था। उनके अन्य रक्षक कहाँ हैं—इसकी भी उसे कोई सूचना नहीं थी। केवल यही सन्तोष था कि भानुवर्मा उसके साथ ही था!

भानुवर्मा कहता जा रहा था—"यह यौवन, यह स्वरूप भी कितना निर्दय है। जहाँ जाओ राजकुमारियों की आसक्ति के मर्म बाण सहो। स्वयं आनन्दित होओ, उन्हें कुंठित करो। किन्तु, वाह! क्या सामञ्जस्य है? कैसी विपरीत स्थिति है। एक के कारण राज-प्रासाद में मस्तक ठोका अब दूसरी ने बन्दी-गृह के पत्थरों पर मस्तक टेकने को विवश कर दिया। देखिये महान् शूरवीर, पराक्रमी, परम तेजस्वी कैकयाधिपति पोरस के पुत्र धनुर्धर किरात महाराज को। पिता विश्व-विजय के स्वप्न देखते हैं और पुत्र राजकुमारियों के बन्दी-गृहों में सौभाग्य सराह रहे हैं।···"

"मैं कहता हूँ, भानुवर्मा! कुछ क्षण तो शान्त हो जाओ।"

"ठीक है मैं शान्त हूँ किन्तु मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि ये

राजकुमारियाँ तो हम पर बल-प्रयोग करें, हम पर भाले तान दें, हम पर शस्त्रों के प्रयोग करने की चेतावनी दें, हमारे सब अस्त्र-शस्त्र छीन लें, हमें बन्दी बनावें और हमारे धनुष-तूणीर, खड्ग तथा नोकीले भाले पार्श्व में ही बँधे रहें, यह कहाँ का न्याय है ?"

किरात के ओठों पर हास्य की क्षीण रेखा प्रकट होकर विलीन हो गयी और भानुवर्मा कहता रहा— "उस दयनीय अभिसार-कुमारी ने आतिथ्य किया, सत्कार किया, अपने स्वरूप की स्निग्ध आभा में कुमारिल यौवन और जीवन समर्पित करने की कामना व्यक्त की किन्तु उस पर तो हमारे धनुर्धारी रोष और तिरस्कार की कुटिल खड्ग ही ताने रहे और यहाँ······मैं प्रश्न करता हूँ यदि सांकल अधिक सुन्दर था तो अभिसार-यात्रा की क्या आवश्यकता थी ?"

"मैं कहता हूँ, परमात्मा के हेतु शान्त हो जाओ भानुवर्मा ! इस समय मेरी मनःस्थिति ठीक नहीं है। तुम नहीं सोचते क्या असम्भावित सम्भावित हो जावे ! हमारी यह यात्रा अशुभ ही रही। सर्वाधिक मूर्खता हमने स्वयं भी की है कि राजगृह को अब तक कोई सूचना नहीं भेजी। हमारे बन्दी बनाये जाने पर क्या कुछ घटित नहीं हो सकता। हमारी यह बैयक्तिक एवं मोद-प्रमोद के हेतु की गयी यात्रा का प्रतिफल कहीं कठ पर कैकय के आक्रमण में न परवर्तित हो जावे। किन्तु मेरे बन्दी बनाये जाने का कारण क्या हो सकता है, भानुवर्मा ?"

"हः, दूसरों की सीमाओं का उल्लंघन करते घूमो। प्रणय-अनुराग का आह्वान करो और जब कोई अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करे तो ध्यान करो, हमारे बन्दी बनाये जाने का कारण क्या हो सकता है ?"

"तब क्या सांकल इतनी कायर हो सकती है ? क्या कठ-राज्य की व्यवस्था इतनी हेय है ? क्या सांकल में एक भी ऐसा योद्धा नहीं है जो राज्य-सीमाओं के उल्लंघन पर हमें ललकारता, हमें वर्जित करता अथवा हमें अनुमति देता। हम किसी सैनिक अभियान, किसी गुप्त उद्देश्य,

किसी राज्य-नियम के अतिक्रमण में तो यात्रा नहीं कर रहे हैं।"

"अभी सांकल-राजकुमारी आती होगी तब पूछूंगा कि हमारे धनुर्धर पर क्यों कृपा की !"

तत्क्षण बन्दीगृह का भव्य द्वार चरर्रचर्र करके खुल गया और सांकल-राजकुमारी प्रियम्वदा समक्ष उपस्थित हुयी। उसकी भृकुटियों में कुटिलता तथा आकृति में अनादर प्रकट हो रहा था। उसकी दन्त-पंक्ति एवं ओंठ ज्यों तिरस्कार में ऐंठे जा रहे थे। अपने नेत्रों की जटिलता में उसने एक दृष्टिपात किरात पर किया और अविचल, कह गयी—"कहिये, तक्षशिला के अनन्तर सांकल पर कृपा-कोर प्रकट हो रही थी क्या ? किन्तु सांकल इतनी सुगम नहीं है, भन्ते ?"

"हमारा वैसा विचार न वहाँ था न यहां, देवि।"

"तब ?"

"अभिसार गया था। वहीं से लौट रहा हूँ", भूमि पर बैठे ही बैठे किरात बोला।

"ओह ! प्रत्यंगिरा···क्या तुम उसको वरण करना चाहते हो ? क्या वह अतीव सुन्दरी है ? किन्तु मैं तुम्हें छुटकारा नहीं दूँगी।"

"और मुझे", भानुवर्मा ने किंचित मुस्कराते हुये प्रश्न किया।

"आप तो सदा ही बाहर रहेंगे।" प्रियम्वदा ने तत्परता से उत्तर दिया।

"किन्तु हमारा अपराध, राजकुमारी !"

"समय व्यक्त कर देगा। यों प्रकट में तो कोई नहीं है, राजकुमार ?"

यों ही किरात को विस्मय हो रहा था कि प्रियम्वदा के साथ कोई रक्षक, कोई सैनिक नहीं है। तब क्या इतनी निर्बन्धता-स्वच्छन्दता ही सांकल के स्वयंवरण की परम्परा की पृष्ठभूमि है ? तब क्या सांकल के कौमार्य की पवित्र आस्था में आचरण की सीमायें इतनी निर्लज्ज हैं।

किरात को यह पूर्ण विश्वास था कि उसके बन्दी बनाये जाने में कोई राजनीतिक दुर्विनीति नहीं हो सकती ।

इसी तिरस्कार में किरात मुँह फेर कर बैठ गया। भानुवर्मा निरन्तर प्रियम्वदा की तुलना प्रत्यंगिरा से कर रहा था । निश्चय ही प्रत्यंगिरा प्रियम्वदा से कहीं अधिक सुन्दर थी । वस्तुत: प्रियम्वदा भी परम सुन्दरी थी किन्तु प्रत्यंगिरा के अद्वितीय सौंदर्य के समक्ष उसमें अधिक टिकाव न था । प्रियम्वदा के रूप में सम्मोहन, मृदुता, मादकता की छलना थी और प्रत्यंगिरा के लावण्य में अबोधता, अमर्यादा एवं शिशु की-सी उच्छृंखलता थी । तन्वंगी प्रत्यंगिरा की अपेक्षा प्रियम्वदा अधिक स्वस्थ प्रतीत होती थी । प्रियम्वदा चतुर तथा विशेष वाक्पटु थी जिससे प्रकट होता था कि उसके सांसारिक अनुभव अधिक विस्तृत हैं । प्रत्यंगिरा के स्थान पर यदि प्रियम्वदा होती तो वह निश्चित ही किरात ऐसे अटपटे तरुण पर अपनी प्राकृतिक मोहनी आरोपित करती परन्तु इससे विपरीत प्रतीत होता था कि प्रियम्वदा में किरात के प्रति तिरस्कार, एक तीक्ष्णता, नेत्रों में अवहेलना प्रतिभासित होती थी ।

तत्क्षण—"ओः कैकय-कुमार, स्वर्णासिन, स्वर्णपीठिका, आसन्दी कुछ नहीं ? ऐसी अवहेलना ? तब तो तुम यहाँ से मुक्त होते ही सांकल को पीस डालोगे । तक्षशिला तो बच गयी किन्तु साँकल का विध्वंस निश्चित है···निश्चित," प्रियम्वदा कहती रही ।

किरात सोच रहा था—इस अनर्गल-लाप के लिए किसने इसे बुलाया था ? कौन इसकी बात सुन रहा है ? क्यों यह कैकय का नाम लेकर इतनी अनियन्त्रित हो जाती है ? इस आवेग-आवेश का कारण क्या है ? कैकय तो कभी कठ के विशेष सम्पर्क में भी नहीं आया ।

धीरे-धीरे किरात में आवेश की मात्रा बढ़ रही थी । किन्तु भानुवर्मा परोक्ष में, निरन्तर मुस्करा रहा था । तभी वह बोला—"बन्दीगृह की इस

निस्तब्धता में राजकुमारी की इतनी दयार्द्रता, समवेदना, सहानुभूति, सदाशयता ही क्या कम है ?…"

"चुप रहो मूर्ख ! यह पोरस की सेना नहीं, साँकल का बन्दीगृह है। अधिक बोलने का दण्ड ज्ञात है, न…।" प्रियम्वदा ने तीव्र स्वर में कहा। उसकी आकृति में रोष की लालिमा प्रतिलक्षित हो गई।

किरात व भानुवर्मा दोनों ही ध्यान कर रहे थे कि वस्तुतः प्रियम्वदा की उस उपस्थिति का उद्देश्य क्या है ? साथ ही प्रियम्वदा बारम्बार बन्दीगृह के उस एकान्तिक प्रकोष्ठ के लौह-द्वार की ओर देखती जाती थी। किरात उस ओर से उदासीन था किन्तु भानुवर्मा प्रतिपल सतर्क हो रहा था। वह सोच रहा था—'प्रियम्वदा की गतिविधि संदिग्ध है।'

उसे आभास हुआ कि कोई लौह-द्वार की ओट में खड़ा है। किन्तु उस समय कैकय-सैन्यबलाधिकृत भानुवर्मा निःसहाय था, शस्त्ररहित था अन्यथा चाहे वह नारी ही होती, कैकय-राजकुमार तथा अपने अपमान का वह निश्चित प्रतिकार करता। अब शनैः-शनैः उसमें परिहास के स्थान पर रोष की आकृति घिर आई थी। उसे प्रतीत हो रहा था कि सौंदर्य की प्रत्यंचा में एवं नारी-रूप के आवरण में सांकल-राजकुमारी, निःशस्त्र प्रहार कर रही है।

तत्काल ही पहले भानुवर्मा तदनन्तर किरात की ज्योंही दृष्टि घूमी तो वे हतप्रभ रह गये। ज्यों सांकल का बन्दीगृह उन्हें जादूनगरी-सा प्रतीत होने लगा। सभी कुछ स्पष्टतः उनके नेत्रों में तैर गया।

समक्ष ही गान्धार-राज आम्भी दृष्टिगत हुआ।

बन्दीगृह के उस एकान्त प्रकोष्ठ में नीरवता का साम्राज्य था। किरात ने एक पल सोचा—'आम्भी यहाँ ?' तब निश्चित ही उनके

बन्दी होने का कारण और कुछ नहीं हो सकता। यह सब आम्भी का ही प्रपंच है।

"अपने अपमान का प्रतिकार, मैं पल-पल, पग-पग, युग-युग तक करूँगा, कैकय-कुमार! आज तुम्हारे अन्त की घोषणा करने वाला कोई नहीं होगा। बन्दीगृह के इन पत्थरों के अतिरिक्त तुम्हारी मृत्यु का कोई साक्षी भी न होगा," कहते हुये आम्भी ने अपने नग्न खड्ग को चूमा और उसे वायु में घुमाते हुये वह कहता गया—"आज तू शत्रु-शोणित पान करेगी। आज तू शत्रु···"

"वीरवर! हम निःशस्त्र हैं अन्यथा···", किरात ने तत्काल वायु-वेग से खड़े होकर कहा और मुष्टिका का एक विषम प्रहार आम्भी की उच्च नासिका पर स्थापित कर दिया। प्रत्युत्तर में, एक झटके से, आम्भी ने खड्ग को उछाला किंतु पूर्व से ही सतर्क किरात दूर हट चुका था। खड्ग भूमि पर खन्नन् करके रह गया। आम्भी सम्भले कि भानुवर्मा ने विशेष कौशल से आम्भी के पैर में अपना पैर लगाकर उसे भूमि पर गिरा दिया और पल भर में किरात एवं भानुवर्मा आम्भी के वक्षस्थल पर अव-स्थित हो गये। अपने को विवश पाकर आम्भी ने अपना खड्ग दूर फेंक दिया जिसे प्रत्यंगिरा ने उठाया और वह किरात एवं भानुवर्मा की ओर झपटी। किंतु असीम आश्चर्य सहित जब उसने घूमकर देखा कि उसकी खड्ग को किसने उछाल कर दूर फेंक दिया है तो वह स्तम्भित रह गई—समक्ष ही एक अनिंद्य नारी-रूप दृष्टिगत हुआ। उसकी दृष्टि और आगे बढ़ी तो उसने सांकल के नव-निर्वाचित शासक समिद्धार्थ को सैनिकों के एक समूह सहित उस ओर बढ़ते हुये पाया।

"महाराज!···" प्रियम्वदा ने अनायास प्रकट किया।···"ओः! आम्भी···" अत्यन्त मंद शब्दों में उसके ओंठ फड़फड़ा गये। खड्ग सहित उसकी कोमल बाहें ढीली होकर नीचे लटक गयीं।

१६

◇ ◇ ◇

उत्तरापथ के जनपदों में समृद्धिशाली गान्धार का शासक आम्भी, कठ-गण-तन्त्र की राजधानी सांकल के विस्तृत बन्दीगृह के एकान्त प्रकोष्ठ में विचारों और व्यवहारों की अवहेलना सहित खड़ा हुआ था। उसके नेत्र शून्य में लीन थे। समक्ष ही कठराज समिद्धार्थ, कैकय-राजकुमार किरात, सैन्यबलाधिकृत भानुवर्मा अर्धवृत्त बनाये खड़े हुये थे। प्रतीत हो रहा था कि आम्भी का सम्मान समाप्त हो गया है। एक वैभव-सम्पन्न सम्राट् के आदर में वहां समस्त उपचार जैसे अव्यवहार्य थे। कोई उस ओर देख भी नहीं रहा था।

कठराज समिद्धार्थ के अंग-रक्षकों की एक लम्बी पंक्ति बन्दीगृह के लौह-द्वार के बाहर ही रह गयी थी; जिसके साथ कतिपय अन्य सैनिक भी थे जो कठ-राज्य के नहीं थे और वे एक विशिष्ट समूह में महाराज समिद्धार्थ के अंग-रक्षकों की पंक्ति के पीछे श्रेणी-बद्ध खड़े हो गये थे।

कैकय-राजकुमार किरात इस समय अधिक आस्वस्त प्रतीत हो रहा था और तभी उसके नेत्र जो उठे तो उसने देखा, समक्ष ही अभिसार की परम रूपवती राजकुमारी प्रत्यंगिरा नग्न खड्ग हाथ में लिये खड़ी थी। उसकी आकृति शान्त मौन-मुखर हो रही थी। प्रतीत हो रहा था

कि किसी प्रसंग से वह विशेष हर्षित हो. गयी है। उससे दो पग हट कर कठ-राजकुमारी प्रियम्वदा अपमान की अवश निरीहता में मौन खड़ी थी। उसकी स्वासो-च्छ्वास की गति भयावह हो रही थी। उसका वक्ष इतना फूल रहा था कि प्रतीत होता था कि शीघ्र ही विदीर्ण हो जायेगा। प्रकंप में उसकी आकृति की लालिमा पील-नील हो रही थी।

कठराज समिद्धार्थ ने उस बन्दीगृह में प्रवेश करते समय इतना तो कहा—"अभिवादन कैकय-कुमार !"

किन्तु किरात के अतिरिक्त जैसे वहाँ कोई था ही नहीं। एक विशाल गण-तन्त्र का शासक भी वहाँ उपस्थित था किन्तु जैसे उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। वस्तुतः जिस स्थिति में कठराज समिद्धार्थ ने आम्भी को देखा था वह अत्यधिक हेय थी। आम्भी भूमि पर पड़ा था और किरात उसके वक्ष पर अपना दाहिना घुटना टेके बैठा था तथा भानु-वर्मा उसके दोनों पैरों पर अपने दोनों पैर रख कर खड़ा था। तभी उनकी उपस्थिति को देखकर किरात ने उसे छोड़ दिया था और भानु-वर्मा भी अपने हाथ हिलाकर पृथक् खड़ा हो गया था। आम्भी अपमान की भयंकर आर्द्रता में उठा और विनत ग्रीवा में एक ओर खड़ा हो गया। उसका वश चलता तो उस क्षण उन उपस्थित व्यक्तियों को पीस डालता। यदि वह उस समय समर्थ होता तो अपनी उस हीनावस्था में आत्मघात कर लेता। किन्तु उसे उतना समय भी नहीं मिल पाया। अतएव मृत्यु से अधिक भयावह आक्रोश की असीमा में वह बन्दीगृह के उस प्रस्तर परिकोटरे की जटिलता में स्थिर खड़ा का खड़ा रह गया।

आनन्द की उद्दीप्ति में प्रत्यंगिरा कभी किरात, कभी भानुवर्मा एवं कभी स्वयं को देखकर मृदु हास झलका रही थी। निकट ही समिद्धार्थ परिस्थिति की विस्मय-जन्य आकुलता में स्थिर खड़े यह भी न सोच पा रहे थे कि क्या करें अथवा क्या न करें।

मृत्यु की-सी उस निबिड़ निरीहता में सर्वाधिक क्षुब्ध प्रियम्वदा थी।

उसके विषम विषाद का एकमात्र कारण उस क्षण वहाँ आम्भी की उपस्थिति थी। हुआ क्या; इससे अधिक व्यग्रता उसे उस बात की थी कि सांकल ही नहीं समस्त आर्यावर्त का जन-जन जब यह सुनेगा तो होगा क्या ? किस प्रसंग को लेकर आम्भी वहाँ तक पहुँचा ! जनसाधारण की वैसी-सी प्रतिक्रिया···किरात को बन्दी बनाये जाने से उस क्षण के कुछ पूर्व तक की समस्त घटना जिस प्रकार गुप्त थी उसी प्रकार उस क्षण वह प्रकट हो रही थी। एक महान् जनपद का राजकुमार सांकल में बन्दी और वहाँ के शासक, दण्डनायक, दण्डपाल, गण-संवाहक, गण सदस्यों, अन्य उच्चस्थ अथवा सहायक शासनाधिकारियों अथवा सैन्याधिकारियों को ही नहीं, बंदीगृह-पति तक को यह ज्ञान नहीं था कि उसके प्रचीरों में कोई विशिष्ट-जन अवस्थित है। अस्तु, प्रियम्वदा ध्यान कर रही थी कि इतनी गुप्त योजना जब, आगामी दिवस में सर्वत्र प्रसारित होगी तो कौन-सी स्थिति बनेगी ? वह यह बात भी अति चिन्ता से सोच रही थी कि वैसी-सी खेदजन्य विवशता में आम्भी के साथ समिद्धार्थ तत्काल क्या व्यवहार करेगा ? यदि कहीं उसका अधिक अपमान किया गया तो···तो क्या होगा ?

इसी विचार नैराश्य के मध्य उसके कर्ण-रन्ध्रों में वे तीक्ष्ण स्वर पैठ गये—"अब आप विराजिये, हम चले, गान्धार-महाराज," कहते हुये भानुवर्मा ने अपने पग हिला-डुला लिये।

तत्क्षण ही कठराज समिद्धार्थ ने प्रकट किया—"ऐं···हाँ, अब यहाँ हम किस प्रतीक्षा में हैं। आइये, कैकय-राजकुमार, आइये !"

भानुवर्मा को लगा आम्भी भी बाहर जा रहा है, तभी वह बोल पड़ा—"ओः, ये महान् पराक्रमी योद्धा गान्धार भी हमारे नरेश आम्भी के साथ चलेंगे।"

प्रियम्वदा का वश चलता तो भानुवर्मा का मुँह नोच लेती। यों भानुवर्मा के उस कथन को जैसे किसी ने सुना ही नहीं और सभी

बंदीगृह के उस एकान्त कक्ष के बाहर चल पड़े।

बाहर उपस्थित सैन्य-श्रेणी ने समक्ष ही तत्परता से सैन्याभिवाद प्रदर्शित किया और तत्काल कठराज समिद्धार्थ के अंगरक्षकों ने उनके दोनों ओर अपने-अपने स्थान प्राप्त कर लिये।

आगे-आगे अभिसार राज्य की संरक्षिणी एक लघु सैन्य-श्रेणी जो प्रत्यंगिरा के साथ आयी थी, उसके पीछे सांकल की एक छोटी व्यवस्थापिका सैन्य-श्रेणी, दो अंगरक्षक, तब कठराज समिद्धार्थ के साथ अन्य चार अंगरक्षक, प्रत्यंगिरा, तब किरात तथा भानुवर्मा सांकल के उस बंदीगृह के सँकरे गलियारे में आगे बढ़ रहे थे। तभी प्रत्यंगिरा ने लौटकर देखा—विषम-म्लान आकृति सहित प्रियम्वदा आगे बढ़ रही थी।

उस अस्पष्ट-सी परिस्थिति में जब समिद्धार्थ ने सुन लिया कि गांधार का शासक आम्भी भी वहीं है तो उसने मन में ध्यान किया कि वह उसकी अभ्यर्थना की औपचारिकता का निर्वाह तो कर ही देवे क्योंकि उस क्षण के पूर्व जीवन में उसने आम्भी को कभी नहीं देखा था। वह इसी आश्चर्य में था कि वह सब संघटना हुयी कैसे ? उस गुप्त योजना की पृष्ठभूमि वस्तुतः अब तो सभी को स्पष्ट थी ही किन्तु अब आम्भी के साथ ही प्रियम्वदा भी अपराधी की श्रेणी में थी। वास्तविकता भी यह थी कि एक प्रदेश के राजकुमार के साथ घटित उस घटना का राजनैतिक महत्व होना स्वाभाविक था और कठ-जनपद व्यर्थ ही उस षड्यन्त्र-चक्र में सम्मिलित हो रहा था।

तभी प्रत्यंगिरा ने, जिसने उस क्षण के पूर्व आम्भी को कभी नहीं देखा था, अनायास—आम्भी को वहां उपस्थित और अब अनुपस्थित देखकर नेत्रों की सांकेतिक भाषा में जैसे किरात से प्रश्न किया—"वह कहां है ?"

किरात ने भी घूमकर देखा, आम्भी लोप था। किरात ने भानुवर्मा को संकेत किया। प्रियम्वदा तो उस तत्परता को समझ ही रही थी

अतः वह अविचल आगे पग टेकती जा रही थी। तत्काल ही भानुवर्मा बोल पड़ा—"अरे ! वे गांधार देवता विलीनोन्मुख हैं···।"

कठराज समिद्धार्थ ने भी घूमकर देखा, सत्यतः वहाँ आम्भी का कहीं पता नहीं था। सैनिक-श्रेणियां तो आगे बढ़ गयीं किन्तु अंगरक्षकों के उस दल सहित कठराज समिद्धार्थ, किरात, भानुवर्मा एवं प्रत्यंगिरा ने सर्वत्र खोज की। आम्भी का कहीं पता नहीं था।

अब यह कौतूहल सबमें व्याप्त हो गया कि आम्भी गया कहाँ और किधर से गया ? किन्तु न तो समिद्धार्थ को पहले ही यह आशा थी कि गांधार के शासक से भी बंदीगृह में भेंट होगी न आम्भी वैसी अपराधी स्थिति में था कि उसके लिये भाग-दौड़ की जाती। बंदीगृह के तूर्य बजाये जाते अथवा उसकी खोज के विशेष प्रयत्न किये जाते।

अस्तु ,आकुलता में सभी आगे बढ़ गये।

इस समय कैकय-राजकुमार किरात, अभिसार-राजकुमारी प्रत्यंगिरा, कैकय के सैन्य-बलाधिकृत भानुवर्मा, कठराज समिद्धार्थ के राज-प्रासाद में आतिथ्य ग्रहण कर रहे थे। भोजन समाप्त करने के अनन्तर सभी राज-प्रासाद में समिद्धार्थ के वैयक्तिक प्रकोष्ठ में स्वर्ण-पीठिकाओं पर अवस्थित हो गये थे और एक सुन्दर यवन-सेविका लवंग-इलायची के पात्र को एक ओर से दूसरी ओर बढ़ा रही थी।

तत्क्षण ही भानुवर्मा ने प्रश्न कर दिया—"आप लोगों को हमारी सूचना कैसे प्राप्त हुयी ?'

कठराज समिद्धार्थ स्पष्ट करे इसके पूर्व ही प्रत्यंगिरा ने प्रारंभ किया—"आप भद्रजन बंदी बनाये जाते और किसी को ज्ञात न होता, यह कैसे सम्भव था। सूचना मिलते ही कारण जानने के लिये पिता जी ने सांकल को राजदूत भेजने का प्रस्ताव किया; तभी मैंने उनसे अनुरोध

किया कि मैं स्वयं सांकल जाऊँगी। यहाँ आकर महाराज से भेंट कर तो हमें सभी को अत्यधिक विस्मय हुआ। ज्ञात हुआ कि सांकल में किसी को भी यह सूचना नहीं है कि कैकय-राजकुमार बंदीगृह में हैं...।"

"अवश्य यह कार्य इतने गुप्त रूप से किया गया कि किसी को विदित ही न था...", बीच ही में टोकते हुये कठराज समिद्धार्थ ने कहा।

"स्त्रियाँ सब कुछ कर सकती हैं देव", भानुवर्मा ने व्यंग्यात्मक मुस्कान प्रकट कर कह डाला।

"किन्तु सभी स्त्रियां एक प्रकार की नहीं होती हैं, सैन्याधिकारी।" ज्यों समस्त नारी-जाति पर लगाये गये उस आरोप का उत्तर देते हुये प्रत्यंगिरा ने कह दिया।

"न्यूनाधिक प्रकृतिजन्य स्वभाव तो सभी में समान होंगे राजकुमारी।" भानुवर्मा ने उत्तर दिया।

"संस्कारों, परिस्थितियों एवं वातावरण का अधिक प्रभाव व्यक्तित्व को बनाना-बिगाड़ना है।" प्रत्यंगिरा ने पूर्ववत् तत्परता से प्रकट किया।

"वातावरण चाहे जितना बनाए-बिगाड़े किन्तु स्त्री के प्रकृतिजन्य गुणावगुणों को कोई कैसे परिवर्तित करेगा। नारी की कोमलता, स्वभाव की अस्थिरता, ईर्ष्या, दम्भ, विग्रह, प्रलोभ, प्रभेद, दुराव, छिपाव, दुरूहता...।"

"क्या ये सब गुण पुरुषों में नहीं होते ?"

"ये गुण—ये गुण हैं ? हाँ, पुरुषों में भी होते हैं किन्तु अपेक्षाकृत न्यून तथा यह भी है कि किसी में कोई गुण होगा तो किसी में कोई किन्तु स्त्रियों में तो वह सब एक ही व्यक्तित्व के अस्तित्व में प्राप्त हो जावेंगे...।"

"तब श्रीमान् के कथनानुसार स्त्रियों में सर्वत्र दोष ही दोष...।"

"ऐसा क्यों है ? पवित्रता, आचरण की शुद्धि भी, विचारों की

श्रेष्ठता, सरलता, सहानुभूति, संवेदना, विनम्रता, परम स्निग्धता, मृदुता, ममत्व···यह सब कुछ भी नारी में उसी सीमा तक असीम है···।"

कठराज समिद्धार्थ एवं किरात, प्रत्यंगिरा एवं भानुवर्मा के तर्क-वितर्क को मौनस्थ सुन रहे थे। परम तार्किक समिद्धार्थ उस प्रसंग पर बोलना ही चाहता था कि दौवारिक ने सूचना दी—"महाराज की जय! परम भट्टारक की जय! कठराज की जय! कैकय देश से एक राजदूत आया है।"

किरात मुस्कराया। भानुवर्मा बोल पड़ा—"चलिये राजदूत ही आया है। महाराज की कोई सेना नहीं आयी है···।"

"प्रतीक्षागृह में प्रतिष्ठित करो। हम···।" कठराज समिद्धार्थ ने निर्देश किया।

"क्या लाभ है? हम स्वयं ही उससे भेंट कर लेते हैं। उतना पर्याप्त होगा।" किरात ने व्यक्त किया।

"बाह्य अलिंद में बैठाओ।" समिद्धार्थ ने पुनः आदेश दिया।

दौवारिक चला गया।

१७

◇ ◇ ◇

उन दिनों भारतवर्ष में जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म का सर्वत्र प्रचार था। बौद्ध धर्म तो उसके भिक्षुओं एवं प्रचारकों द्वारा विदेशों में भी पहुँचाया गया था। वस्तुत: जैन धर्म, पूर्वोत्तर प्रदेशों में तथा बौद्ध धर्म पूर्वोत्तर एवं पश्चिमोत्तर राज्यों में भी प्रचारित था। दोनों ही मत-मतांतरों को मानने वाले शासक भी थे और जनता भी थी। अनेक स्थानों में भिक्षुसंघ स्थापित थे। संघाराम, अशोकाराम, कुक्कुटाराम, से भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ निकलकर, हाथों में पिटक लिये, चीवर धारण किये पण्यवीथियों में घूमा करते थे। ये भिक्षा लेते, जन-जन में सत्य-अहिंसा का प्रचार करते, अष्टांगिक धर्म-लक्षण समझाते देश-देशांतरों में घूमते थे। जैन-मुनि हाथों में पीछी-कमंडल लिए, व्रत-उपवासों के कठोर व्रत धारण किए, दश-लक्षण-धर्म का संदेश देकर निःश्रेयस एवं निर्वाण के हेतु कर्म एवं आत्मा की श्रेष्ठता तथा पवित्रता का पाठ पढ़ाते थे।

उस काल यों उनमें प्रत्येक की आस्था थी। सभी उस सत्य-अहिंसा धर्म का आदर करते थे। यज्ञ, बलि, ब्राह्मण धर्म की कठिन जटिलता के स्थान पर आत्म-शुद्धि की प्रेरणा जन-जन में व्याप्त हो रही थी।

भिक्षु, भिक्षुणियों, साधुओं, मुनियों का सर्वत्र स्वागत होता था। इनके संघ निर्द्वन्द्व, निर्बन्ध यत्र-तत्र घूमते थे। कहीं-कहीं शैव, ब्राह्मण अथवा अन्य धर्मावलम्बियों से मत-मतान्तरों के तर्क को लेकर शास्त्रार्थ भी होते थे। अपढ़ और मूर्ख जन उसी धर्मान्धता में बल-प्रयोग भी कर देते थे किन्तु यों जैन एवं बौद्ध धर्मों की ओर अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ रही थी।

इतना सब होते हुए भी हिंसा का समूलोच्छेदन नहीं हुआ था न होना सम्भव था। सामान्य जनता तो भले ही अपने दैनिक कार्यक्रमों में अहिंसा की चिन्तना करती रहती थी किन्तु शासक-वर्ग में सत्य-अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा होते हुए भी छल, छद्म, विग्रह, युद्ध होते रहते थे। सत्ता और राज्य में वैसा-सा ही मोह स्वाभाविक था।

यों भगवान् महावीर एवं तथागत भगवान् बुद्ध स्वयं अपने जीवन-काल में इन युद्धों को, इन पारस्परिक विग्रहों को रोकने में असमर्थ रहे। उनके जीवनकाल में भी वृजि, लिच्छवि, मगध, मल्ल, वैशाली, कौशाम्बी, विदेह, मिथिला, अन्यान्य लड़ते ही रहे; तब वह बाह्लीक प्रांत, वह उत्तरापथ धर्मास्था के आधार पर युद्ध बन्द कर दे, राज्य-विस्तार की आकांक्षा नष्ट कर दे; व्यक्ति अपनी महत्त्वाकांक्षा की जन्मजात मर्यादा समाप्त कर दे; यह कैसे सम्भव था।

अस्तु, बाह्लीक प्रान्त में कलह-विग्रह की नित नवीन चेष्टायें होती रहती थीं।

इसी कलह-विग्रह में देशाटन करके जो भिक्षु भारत लौटते थे अथवा सार्थवाह अपने व्यापार-वाणिज्य के प्रसार अथवा समाप्ति के अनन्तर अपने-अपने स्थानों में आकर नाना प्रकार के अनुभव एवं सूचनायें देते थे उनमें आजकल केवल एक ही चर्चा था—मकदूनिया की सैन्य-शक्ति का प्रबल प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है।

गान्धार, कम्बोज, अश्वक, गौर, उरशा, अभिसार, ग्लुचुकायन, कठ, सौभूति, मालव आदि उत्तरापथ के गण-राज्यों में शनैः-शनैः ये सूचनायें आ रही थीं कि पश्चिम में एक महान् सबल सैन्य-शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है।

इस अनिश्चितता के वातावरण में इधर कैकय-गान्धार विग्रह-विद्वेष चरम सीमाओं पर पहुँच रहा था। सांकल से लौटकर आम्भी व किरात अपनी-अपनी प्रतिक्रियाओं के आधार पर वातावरण में उत्तेजना भर रहे थे।

आम्भी ने तक्षशिला में अवस्थित कैकयराज पोरस के क्षत्रप को भगा दिया और गांधार एवं कैकय पर पुनः युद्ध के बादल मँडराने लगे।

किसी न किसी रूप में निकटवर्त्ती अथवा पार्श्ववर्त्ती कठ राज्य तथा अभिसार राज्य के जनपद भी कैकय अथवा गान्धार से सम्बन्धों के आधार पर सतर्क हो रहे थे। परन्तु स्पष्टतः कठ व अभिसार दोनों ही का झुकाव पोरस की ओर था। अभिसार तो अपनी राजकुमारी के परिणय की आकांक्षा में कैकय का अनुचर होने की अभिलाषा कर रहा था।

कठ-कुमारी प्रियम्वदा एवं आम्भी के प्रणय-प्रसंग पर महाराज जयविजय से लेकर आज तक जो घृणा एवं तिरस्कार कठ-गण-परिषद् में तथा सांकल में विद्यमान था, उसके आधार पर सहज मैत्री सम्बन्ध कैकय का ही आह्वान कर रहे थे।

इतने प्रतिरोध, विरोध-विद्रोह के होते हुये भी राजकुमारी प्रियम्वदा की वीणा की झंकार में आम्भी नाम की श्रेष्ठता के स्वर ही स्वरित-स्वरित हो रहे थे। प्रियम्वदा, बन्दीगृह की उस घटना की असफलता, अपमान, अनादर, अवहेलना का विषपान कर अति गम्भीर हो गई

थी। उसने अपने एकान्त प्रवास-कक्ष से बाहर निकलना समाप्त कर दिया। प्रत्येक से मिलना-जुलना समाप्त कर दिया। अब उस नीरव-निर्जनता में, उस विरह-वह्नि के प्रज्वलन में, उस यौवन-उद्दीप्ति में जो बयार आती तो उसके साथ आम्भी का नाम जुड़ा होता। वह उसका कैसा-सा अनुराग है, उसमें कितना तथ्य, कितना सत्य, कितनी बुद्धिमत्ता, कितना पात्र-कुपात्र का वर्गीकरण है; नैतिकता, सदाचार एवं व्यवहार के आधार पर कितनी तार्किक मीमांसा है—इस सबसे उसे कोई प्रयोजन नहीं था। किसी को वैसे में कोई प्रयोजन नहीं रहता है। प्रियम्वदा को—आम्भी एवं अपने बीच आयु के असाम्य की भी—कोई चिन्ता नहीं थी। आम्भी अनेक पत्नीव्रतधारी, अनेक पुत्र-पुत्रियों का पिता है, इस तथ्य पर भी प्रियम्वदा का कोई ध्यान नहीं था। राजकुमारी के वैयक्तिक जीवन-साम्राज्य में बुद्धि का नहीं, केवलमात्र हृदय का शासन चल रहा था। बुद्धिबल के अभाव में वह हृदय-दुर्ग वहाँ ही ध्वंस हो रहा है। प्रियम्वदा को ही नहीं किसी को भी, पूर्वापरि, ज्ञात नहीं होता।

अतएव इधर घटनाक्रमानुसार जब से प्रत्यंगिरा एवं प्रियम्वदा का साक्षात्कार हुआ था; उस पल से जब से प्रत्यंगिरा ने अपनी खड्ग से प्रियम्वदा की खड्ग को दूर उछाल दिया था; उस क्षण से जब से एक नारी के समक्ष दूसरी नारी, असफल, अपमानित, अनाहत हुयी थी; नहीं-नहीं, प्रियम्वदा के परम वन्दनीय आम्भी का मान भंग हुआ था; तब से ही प्रियम्वदा अवश-म्लान हो अपने कक्ष में ही पड़ी रहती थी। कभी वह उठती तो स्वर्ण-पीठिका पर जा बैठती और लेटती तो स्वर्ण पर्यङ्क का आपायतन मस्तक पर टेक लेती। किन्तु उसमें एक दृढ़ता अवश्य थी। वह किसी भी समझौते के लिए तत्पर न होते हुए भी अपने स्नेहाभिसिञ्चन में अपने ही तक केन्द्रित अवश्य थी। न उसने

अपनी वैयक्तिक मर्यादा को कहीं भंग होने दिया था न अपने निश्छल कौमार्य को ! कौमार्य की पवित्रता की आस्था में भी वह केवल अनुराग कर रही थी—केवल प्रणय । उसने कभी परिणय की कामना नहीं की । उसने अपने स्वर्गीय पिता से अथवा अन्य किसी से भी कभी अपनी इच्छा प्रकट नहीं की कि वह आम्भी को प्रदान कर दी जावे । न ही उसने स्वयं यह चाहा कि अपनी कुल-मर्यादा आस्था भंग कर वह आम्भी के निकट पहुँच जाय । अपने जनपद में प्रचलित स्वयंवर की प्रथा के प्रचलन की उपस्थिति में उसने वैसी क्रिया सम्पन्न करने का भी अनुरोध नहीं किया । वस्तुतः वह पूर्ण शान्त-एकान्त-एकाग्र हो किसी की आराधना में लीन होना चाहती थी—हो गयी थी । भले ही उसका आराध्य कोई था । वह तो दुष्ट आम्भी था जिसने उसे उस ओर उन्मुख किया कि वह किरात की मर्यादा का खिलवाड़ करे अन्यथा वह उस सब प्रपंच में सम्मिलित होने को कभी तत्पर नहीं थी परन्तु उस तत्परता के अनन्तर फिर पीछे हटना उसने स्वभावतः जाना ही नहीं था । भले ही वह उसमें असफल हो, हो ।

सदाचरण, संस्कारों, आस्थाओं, मान्यताओं के आधार अथवा विरोध स्वरूप वह दुःशीला थी अथवा सुशीला इसकी तो उसने कभी चिन्ता भी नहीं की किन्तु अपने मरणासन्न पिता की इच्छा की अवहेलना में उसने सतत् आम्भी का जाप किया—उसमें वह कितनी न्यायसंगत थी, इसका भी उसने पल-भर को कभी सोच नहीं किया । अपनी कटिबद्धता में अपने स्वजनों-परिजनों को छोड़कर भी अपने पितृव्य को अपने व्यवहार, अपनी बुद्धिहीनता, अपनी मानसिक अथवा हार्दिक निर्बलता से कहीं महान् क्षोभ, महान् दुःख, नैराश्य की मर्मान्तक वेदना प्राप्त हो रही थी, यदि पल-भर को भी वह उसका ध्यान कर लेती तो मृतक पिता की आत्मा को शान्ति मिलती ।

अन्ततः अब जो सोच उसमें रह गया था वह केवल इतना कि उस

घटना अथवा आम्भी के अपमान की प्रतिहिंसा में वह कोई ऐसी योजना बनावे जिससे किरात अथवा प्रत्यंगिरा से प्रतिकार कर सके।

तथैव किरात भी संकल्प कर चुका था कि किसी प्रकार प्रियंवदा को दुसह्य दुःख दे।

ग्रीस

१८

◇ ◇ ◇

चतुर्दिक पर्वतमालाओं के उच्च शिखरों की नोकों के बीच जो निवासी वास करते थे उनके भालों की नोकें भी वैसी ही ऊँची उठी रहती थीं। उनके भालों की नोकें ही ऊँची नहीं थीं, वे किसी भी नीची पर्वतीय चोटी से कम ऊँचे नहीं थे। उनकी ऊँचाई उन व्यक्तियों की थी जिनकी प्रकृतियों में बर्बरता, शरीर की गठन में नाहर की-सी तीक्ष्णता, बात में खड्ग की-सी काट, अस्त्र-शस्त्र संचालन में बाण से भी भयानक चोट रहती थी। नगर, ग्रामों को घेरे वे पर्वतीय उपत्यिकायें पर्वत के समान कठोर निवासियों में लौह-सी शक्ति ही नहीं प्रस्तर-सी आत्मा भरती थीं। उनके बालकों को देखने से प्रतीत होता था कि किसी भी पूर्ण पुरुष की ऊँचाई को छू लेंगे। वे बलिष्ठ बालक पर्वतीय कन्दराओं में पत्थरों से खेलते, पत्थरों से सर फोड़ते, हाथ-पैर तोड़ते और पत्थर की शक्ति अपने में भरते जाते थे और एक दिन जब वे युवक होते थे तो पत्थर की ऊँची चोटी के समान दिखायी देते थे। वे यों अशिक्षित तथा अपढ़ होते थे किन्तु उनमें सैन्य-शक्ति व गुणों का प्रादुर्भाव जन्म से ही हो जाता था। खड्ग, भाले, भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र-संचालन, अश्वारोहण, व्यूह-रचना, युद्ध-कौशल जैसे उनको पैतृक गुणों व सम्पत्ति के रूप में ही प्राप्त होता था।

वे चलते तो लगता धरती धँस जायेगी। वे उठते तो लगता आकाश छू लेंगे। वे बोलते तो लगता फाड़ खायेंगे। उन्हें कोई देखता तो प्रतीत होता कोई दैत्य सामने आ रहा है। उनके भारी-भारी सर, डरावनी आँखें, तीखे श्मश्रु, ऐंठती भृकुटियाँ दानवों की-सी होती थीं। यों उनके कृत्य भी दानव-सदृश ही थे किन्तु उनकी नैतिकता, उनका अदम्य साहस, देश के प्रति असीम प्रेम, सद्भावना, स्वदेश के लिये मर मिटने की अमिट चाह उनमें प्रति क्षण विद्यमान रहती थी।

भारतवर्ष से दूर बहुत दूर एक देश था मकदूनिया, उसके वे प्रवासी थे और उनका नेता, उनका राजा, उनका सब कुछ था फिलिप। अपने राजा की वह देवता से अधिक पूजा करते थे। उनका ध्यान था कि देवता, भगवान्, परमात्मा, खुदा और उनकी अपनी देवी, रिहा तथा जूना, वीनस, मिनर्वा, प्लेटो तो आसमान में रहते हैं किन्तु उनका प्रतिनिधि, उनका राजा धरती पर रहता है अतः वह अपने राजा को भगवान् का अभिन्न अंग मानते थे। उसकी हुँकार पर प्राण देने को तत्पर रहते थे।

इनकी सभ्यता, इनकी संस्कृति, इनका साहित्य, इनका इतिहास बड़ा प्राचीन था, बड़ा गौरवमय। वह यूनानवासियों की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास था। वह उनका भी और इनका भी गौरव था। वे सांस्कृतिक जन यूनान के नगरों में वास करते थे और ये पर्वतीय बर्बर-योद्धा यूनान देश के शिला-प्रदेशों के प्रवासी थे। ये मकदूनिया के रहने वाले थे।

इनका राजा फिलिप एक महान् योद्धा था। उसने अपने पर्वतीय प्रदेश को एकत्र कर विशाल सैन्य-शक्ति का गठन किया था। ये सेनानी लौह-शरीर पर लौह-वस्त्र धारण करते थे। लोहे के टोप, लोहे के वर्म, लोहे की शृंखलायें, भारी भाले, विषाक्त तलवारें, लोहे के जूते धारण

कर एक प्रकार से ये ऊपर से नीचे तक अपने को लोहाच्छादित कर लेते थे।

ये बेचारे सैनिक, ये सरल पर्वतीय मकदूनिया-वासी, नगर-निवासियों के समान सभ्य, सांस्कृतिक अथवा वैभव-विलास प्रिय नहीं थे। ये तो सीधे-सादे, अक्खड़ ग्रामीण-जन थे और सशक्त योद्धा।

ये युद्ध-प्रिय थे और वे विलास-प्रिय। इनका वैभव शस्त्र था और उनका वैभव था विलासिता-कामुकता। वस्तुतः यूनान का साहित्य बड़ा भव्य था; अत्यधिक प्राचीन तथा प्रसिद्ध और साहित्य का सृजन स्थान, सृजन-शक्ति, सृजन-वस्तु, सृजन-केन्द्र होता है विलासिता, कामुकता, ऐश्वर्य, वैभव, सम्पन्नता, कमनीयता, दमनीयता, प्रणय, परिणय, अनुराग, शृंगार, शांति, करुणा।

और इनका साहित्य नहीं इनका था इतिहास बड़ा भव्य, बड़ा प्राचीन तथा प्रसिद्ध और इनका शक्ति-स्रोत, इनका बल, इनकी शक्ति थी पौरुष, युद्ध, गति-प्रगति, अश्वारोहण, सैन्य-संचालन, प्रणय-परिणय अनुराग के स्थान पर व्यूह-रचना, शृंगार, शांति, करुणा के स्थान पर वीरता, बीभत्स, क्रिया-कलाप, निर्दयता, कठोरता, भीषणता, भयंकरता।

साहित्य इनका भी था, है, अथवा हो सकता है किंतु दूसरे प्रकार का। इतिहास उनका भी था, है अथवा हो सकता है किन्तु दूसरे प्रकार का।

अस्तु, यूनान के छोटे-छोटे गणतंत्रों एवं राज्य-तंत्रीय राज्यों की उत्तर-पूर्वीय सीमा पर मकदूनिया का यह पर्वतीय राज्य था जिसका शासनाधिकारी था फिलिप।

मकदूनिया का यशस्वी सम्राट् फिलिप एक तीखे वेगवाहन अश्व पर

अपने राज्य के सीमा-प्रदेश का निरीक्षण करने जा रहा था। उसके साथ प्रबल योद्धाओं की एक टुकड़ी पीछे-पीछे चल रही थी। ये योद्धा लोहे के टोप पहने, नीले रंग के मोटे कोटों के अन्दर लोहे के भारी वर्म धारण किये हुये थे। इनकी कमर में दोनों ओर दो-दो तलवारें लटक रही थीं और ये दाहिने हाथ में भाले लिये हुए थे जिनके नीचे के कोने पैर के अंगूठों पर टिके हुए थे। इनके गौरवर्ण की ऐंठती आकृति में उभरी गलमुच्छें पर्वतीय प्रदेश की शीतल किंतु तीव्र वायु में फरफरा रही थीं।

यह सैनिक टुकड़ी, दो-दो की पंक्ति में फिलिप के पीछे चल रही थी तथा फिलिप की दाहिनी ओर एक बालक एक छोटे अश्व पर चल रहा था। बालक की भाँति ही वह बाल-अश्व भी बड़ा तीखा, बड़ा चंचल दिखायी दे रहा था।

बालक अपने साथ के अन्य अश्वारोहियों की ही भांति सैनिक वेश धारण किये हुये था। इसकी कमर में दाहिनी ओर एक छोटी तलवार लटक रही थी तथा यह अन्य सैनिकों की भांति ही छोटा-सा लोह-वर्म धारण किये हुये था। यह अपने बायें हाथ में अपने अश्व की रासें लिए हुये था जिनको यह चलते-चलते खींच लेता था जिससे उसका नन्हा अश्व उसी की भांति चंचल होकर उछल पड़ता था।

तभी उस राजकुमार का पिता फिलिप अपनी एक शालीन मुद्रा में किंचित मुस्कान भरकर कहता—"अलेक्जेंड्र! ऐसा मत करो! घोड़े को मत तंग करो।"

तब प्रत्युत्तर में बालक उत्तर देता, "पिता! यह शैतान है। ठीक नहीं चलता है।" कहकर अपने पैर की एड़ से उस घोड़े की पीठ को यह दाब देता जिससे घोड़ा और अधिक चपल होकर उछल पड़ता!

तब फिर फिलिप तीव्र स्वर में पुकारकर कहता—"अलेक्जेन्ड्र! ...."

और तब बालक समझ जाता अब पिता में रोष भर गया है अत: वह सीधे-सीधे चलने लगता किंतु उसकी चंचल आँखें उन पर्वतों, उन कन्दराओं, उस ऊँची-नीची असम भूमि पर निरन्तर कुछ पढ़ती, कुछ खोजती चलतीं।

उस गौरवर्ण सुन्दर राजकुमार को देखने से प्रतीत होता था कि वह अपने पिता अथवा अन्य सैनिक अश्वारोहियों की ही भांति ऊँचा, हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ होगा। साथ ही उस नन्हे 'अश्व' को देखकर भी प्रकट होता था कि वह भी अपने अन्य सहगामी अश्वों की ही भांति बलिष्ठ व चपल होगा।

फिलिप अपने अन्य अंग-रक्षकों सहित आगे बढ़ रहा था। बालक भी साथ चल रह था तभी बायीं ओर की एक खोह से एक सिंह बाहर निकला। सभी निश्चल व शांत आगे बढ़ते रहे। अश्वों की पगचापों के मध्य तभी सिंह ने एक तीव्र चीत्कार फेंकी ? फिलिप के भाले का भरपूर हाथ सिंह पर पड़ा था और सिंह धराशायी होकर एक पल में छटपटा रहा था।

तभी फिलिप तथा अन्य सैनिकों ने जो घूमकर देखा तो अश्व सहित बालक लोप था।

फिलिप अनायास चिन्तित हो गया। पिता का वात्सल्य तत्काल प्रकट हो गया। वह कांप गया। उसकी आकृति में सिंह को एक भाले से समाप्त करने पर जो गर्व, जो तेजस्विता प्रकट हुयी थी वह निमिष-मात्र में विलीन हो गयी और उसकी आकृति पीली पड़ गई।

फिलिप ने अपना अश्व पुनः सीधा किया और सैनिकों को आदेश दिया, "अलेक्जेन्ड्र किधर गया······ढूँढ़ो···।"

सतर्कता में सभी सैनिक विभिन्न दिशाओं की ओर जाने को तत्पर हुये कि समक्ष ही फिलिप ने देखा—अलेक्जेन्ड्र दूर से चला आ रहा

है । वह अपनी पीठ पर कोई वस्तु लादे हुए था। उसका बाल-अश्व उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था।

देखते-देखते अलेक्जेन्ड्र सामने आ गया और उसने धम्म से पीठ पर लदी उस वस्तु को एक शिलाखण्ड पर पटक दिया। वह सिंह का एक बच्चा था।

फिलिप मुस्कराया।

अलेक्जेन्ड्र का नन्हा अश्व अपने आप सीधा खड़ा हो गया जैसे बालक को बुला रहा हो और तभी बालक अपने अश्व पर जा बैठा।

पीछे दो सैनिकों ने मृत सिंह व सिंह के बच्चे को अश्वों की पीठ पर लादा और वह दल आगे बढ़ गया।

१६

◇ ◇ ◇

एम्फिसा का युद्ध जीतकर फिलिप अपनी विशाल सैन्य-शक्ति सहित बोनिया की ओर बढ़ रहा था। विजेता फिलिप की फौजें उन्मत्त अभियान की रण-भेरियाँ बजाती, फिलिप के जयकारों से दिक्दिशायें गुंजायमान करती शिरोनिया के पश्चिमी फाटक से ज्यों ही घुसीं कि उन्हें समक्ष ही एथेन्स तथा मित्र-देशों की सैन्य-शक्ति सामने दिखायी दी।

एथेन्स ने जो मोर्चा शिरोनिया में लगा दिया था उससे थेबीज की ओर बढ़ने का मार्ग अवरुद्ध था तभी फिलिप कड़क उठा। फिलिप की विजय-वाहिनी अपने दोधारों, तलवारों, कटारों को दमकाती आगे बढ़ आयी और उसने देखा कि समक्ष ही युद्ध तत्पर है।

मकदूनिया के उस पर्वत-प्रान्तीय साम्राज्य का छत्रपति फिलिप मूल यूनान प्रान्त के छोटे-छोटे राज्यों को विलीन करता एथेन्स की सैन्य-शक्ति को कुचलने को उद्यत था। जिस प्रकार सामरिक उत्थान के प्रभात में मकदूनिया का राज्य विजय का आह्वान करता हुआ पार्श्ववर्ती यूनान के छितरे हुये छोटे राज्य-तन्त्रों व वहाँ के शासकों के ऐश्वर्य-विलास की अवनति-संध्या को ललकार रहा था, उसी प्रकार इन छिन्न-भिन्न शासकों

की सुख-समृद्धि का अस्ताचलीय सूर्य फिलिप की विशाल सेना को समक्ष देख, ठिठककर स्थिर हो रहा था।

यूनान की मान-मर्यादा एथेन्स ने फिलिप के विरोध को—एकत्र कर साढ़े तीन मील के लम्बे घेरे में—सेनायें फैला दी थीं। उसका एक छोर शिरोनिया को छू रहा था तो दूसरा केफीसस नदी के किनारे को। दिग्वजयी फिलिप के तीस हजार पदाति तथा दो हजार सबल अश्वारोही सैनिकों की लौह सैन्य-शक्ति के सामने लगभग इतनी ही फौज एथेन्स ने भी वहाँ जमाकर रक्खी थी।

फिलिप निर्द्वन्द्व, राज्यों को विजित करता आगे बढ़ रहा था और उसे कदापि यह आशंका न थी कि अपने उस अभियान में शिरोनिया के फाटक पर भी उसे कोई मोर्चा सँभालना होगा।

पदाति सेना के वे दानव-से योद्धा अपने दोधारे भाले उभार-उभार कर शत्रु की मृत्यु का आह्वान करने को बावले हो उठे थे। उनके भुज-दंड अपने खड्ग सँभाले वायु-घोष सहित ऐंठकर बताना चाहते थे—"ऐ एथेन्स के सैनिको! आओ-पत्थरों से टकराओ और मकदूनिया के लौह को अपनी-अपनी वक्ष के पार हो लेने दो!"

रणभेरी बजी और फिलिप युद्ध में जूझ गया। मकदूनिया की तलवारों की काट की जो खनखनाहट उभरती थी तो एक ओर एथेन्स के किले को थर्रा देती थी और दूसरी ओर मकदूनिया के पर्वत-स्थल पर अवस्थित ईगी के दुर्ग को!

युद्धस्थल मकदूनिया और यूनान के योद्धाओं से रक्त-रंजित हो रहा था। मकदूनिया-वासी अपने उत्थान के आह्वान में और एक के बाद दूसरे प्रान्त की भूमि को रौंदने की तत्परता में शिलाखण्डों की भाँति शत्रु के सैनिक को अपने भाले से छेदकर पीस डालते थे और तब उच्चस्वर में

चिल्लाते थे—"सम्राट फिलिप की जय··· । मकदूनिया जिन्दाबाद !"

फिलिप की फौज के ईगी के दुर्ग से चलने के पूर्व उसके सशक्त योद्धाओं की जीवन-चर्या थी दिवा-निशा मदिरा से अपने ओठों को तीखा करना, पर्वतीय वन्य प्रदेशों में सिंहों को फाड़ना और अपने विरोधी अथवा शत्रु को ललकार के एक ही प्रहार पर दो टुकड़े कर डालना । इनसे मृत्यु भय खाती थी । इनकी वीभत्स आकृतियों में चमकते नेत्र जब एक ओर स्थिर होते थे तो धरती फटती-सी प्रतीत होती थी । मनुष्य के जीवन का महत्व इनके समक्ष एक साधारण जन्तु से अधिक नहीं था । जब तक जीवन में किसी मकदूनियन ने किसी को भाले से बेधा नहीं, तलवार से छेदा नहीं, कटार से काटा नहीं तब तक वह जीवन को किसी ज्योति, किसी शौर्य, किसी पराक्रम, किसी ओज से अपने को सूना मानता था ।

मकदूनिया की इस बर्बर जाति के दानव जब तक अपने खड्ग से किसी की हत्या नहीं करते थे तब तक एक फीता कमर से बाँधे रहते थे और जब तक वे किसी एक भयानक जंगली सूअर को मार डालने के आह्लाद में उछल नहीं पड़ते थे तब तक अपने साथियों के साथ एक मेज पर बैठकर न खा सकते थे न मदिरा ढाल सकते थे ।

ये अपने पैने भाले हाथ में लेकर जब शराब के पात्रों पर पात्र रिक्त करते थे तो उन्माद में धरती कँपा देते थे ।

वह मकदूनिया के पर्वतों के बीच बहती हुयी थर्राती वायु भी, मकदूनिया-वासियों को छूकर जिसमें रक्त की-सी गरमाहट उभर आती थी, जिसमें हिंसा के उन्माद की गुदगुदी भरने की क्रूरता इठलाती थी, जिसने लुडिया की झील के किनारे बैठाल कर यूरीपिडीज में 'बेसी' के काव्य की प्रेरणा जागृत की थी ।

इन्हीं मकदूनिया वालों को सभ्य ग्रीधवासी बर्बर, जंगली, वीभत्स, शराबी और अपनी तुलना में पशु मानते थे । इसी ग्रीस के चमत्कृत

नगर एथेन्स एवं अन्य सुसभ्य-सुसंस्कृत नगर-ग्रामों के प्रवासी मकदूनिया के उस बढ़ते हुए उत्कर्ष को देखकर भयाक्रान्त हो रहे थे। वैभव और समृद्धि में जो विलासिता उनमें पैठ चुकी थी तथा उससे उनके सैनिकों के उत्तुंग भालों की नोकों में जो प्रकम्प व्याप्त हो रहा था, उससे वे फिलिप से स्थल-स्थल पर हार रहे थे। फिलिप ने ग्रीस-विजय के हेतु जो सैनिक-प्रयाण प्रारम्भ किया था उसमें एक के पश्चात् दूसरा शासक, पराजय के आक्रोश सहित अन्यत्र विजय की आकांक्षा में शान्त हो रहता था।

अस्तु, शिरोनिया में अनेक राज्य-तन्त्र सम्मिलित होकर फिलिप को पराजित करने के हेतु एकत्र हो गये थे। वह रणस्थली ऐतिहासिक युद्ध की विभीषिका से प्रकम्पित हो रही थी।

ग्रीस के वे कुशल सेनानी अस्त्र-शस्त्रों के नैपुण्य में, ग्रीस के गौरव-मय अतीत की गरिमा में, पराजय के व्यतीत आक्रोश में विजय की अभिलाषा सहित मकदूनिया के पत्थर-से योद्धाओं को कुचल डालना चाहते थे।

मकदूनिया के विरुद्ध ग्रीस ने जो सम्मिलित विरोध किया था तथा युद्ध में अपने विश्व-विख्यात अनुभवों एव कौशल का जो प्रदर्शन करना चाहते थे उस आधार पर शिरोनिया में उन्होंने भयंकर व्यूह-रचना की थी।

जिस प्रकार भारतवर्ष के विभिन्न प्रख्यात-जनपदों के अतिरिक्त मात्र उत्तरापथ में चौबीस जनपद अवस्थित थे, उसी प्रकार उन दिनों ग्रीस में भी अनेक साम्राज्य स्थापित थे, उनमें कुछ भारतवर्ष की ही भाँति गण-तन्त्र प्रणाली द्वारा शासित थे और कुछ में केवल राज-तन्त्रात्मक शासन की व्यवस्था थी।

फिलिप एक-एक करके इन सभी शासकों को परास्त कर समूचे ग्रीस पर आधिपत्य स्थापित करने के हेतु दिग्विजय को निकल पड़ा था।

शेरोनिया में फिलिप ने देखा कि थेबीज के सेनानियों ने थेगेनीज के नेतृत्व में अपने 'सैक्रेड-बैंड' के योद्धाओं को आगे की पंक्ति में डटा रखा है।

थेबीज के योद्धाओं के लोहे के भारी टोप, भारी लोहे के वर्म, ढाल तलवारें, वे नोकीले दोधारें भाले जब एक साथ खन-खन करके शब्द प्रकट करते थे तो लगता था कि कहीं लौह-शृंखलाओं का एक ढेर हिल-डुल रहा है। शिरोनिया के युद्ध-स्थल में लौह-वर्मो की झनझनाहट में जब आहत सैनिकों की चीत्कारें प्रकट होतीं तो उस रोर, उस घोष में पृथ्वी-आकाश काँप उठते थे। मकदूनिया के वे सेनानी मृत्यु के उस तांडव नर्तन में अपने प्रहार करते हुये जब अट्टहास कर अपनी गर्वीली किन्तु भयानक आकृति में हुँकार भरते थे तो वीरों के हृदय भी दहल उठते थे।

थेगेनीज की सेनायें भयानकता से युद्ध कर रही थीं। अस्त्र-शस्त्रों की उस कटन में उप-सेनाध्यक्ष पीथन ने तभी चिल्लाकर कहा—"कमान्डर! हम बायें नहीं बढ़ पा रहे हैं! हमार प्रबल प्रहारों से मकदूनियों की अपार क्षति हुयी है किन्तु उन दुर्धर्ष योद्धाओं के समक्ष हमारे बायें ओर की गति रुकी हुयी है···

"हः हः, पीथन! खुश होओ। एपेमिन्डास उधर ही ल्यूक्राढा एवं मन्हीनिया की ओर जीत रहा है। शिरोनिया में फिलिप की सेना हार कर जायेगी।

"कमाण्डर! वह फिलिप है ···।"

"हाँ! हमारे ऐपेमिन्डास का ही वह शिष्य है। उसने ही उसे शस्त्र-संचालन की शिक्षा दी है। क्या वह उससे जीतेगा? हः, क्या वह थेबीज की सेनाओं को पराजित कर सकता है? असम्भव पीथन··· असम्भव··· ।"

"किन्तु··· ।"

"दाहिने बढ़ो। चिन्ता मत करो। थेबीज फिलिप का शिक्षक है। ऐपेमिन्डास तथा पेलोपिडास ने उसे तलवार चलाना सिखाया है। पीथन दाहिने बढ़ो—दाहिने। हम इधर पर्याप्त हैं।"

"कमाण्डर! डेमास्थनीज का गर्व आज कुचल गया तब? तब कमाण्डर क्या होगा? बोलो, क्या होगा?"

"ऐसा असम्भव है। ऐसा नहीं हो सकता। बीच में लगी ऐसीन्स, कोरन्थियन तथा फोसियन की सेनायें मकदूनिया को पीस डालेंगी। तुम घबड़ाओ मत!"

"ओह! ये सब मिलने ही चाहिये थे। इन राज्यों को सम्मिलित रूप से ही, न जाने कितने पहले, एक होकर मकदूनिया का सर कुचल डालना चाहिये था।"

"वह अब होगा, नवजवान! वह अब होगा। तुम्हें पता नहीं डेमास्थनीज ने हेलेन की स्वतंत्रता के नाम पर समस्त ग्रीस को एकत्र किया है। शिरोनिया में कुछ होकर रहेगा······। तुम बायीं ओर की चिन्ता मत करो पीथन! उधर एथेन्स की विशाल अश्वसेनायें मकदूनिया का संहार कर रही हैं।"

"एथेन्स बायें है? ओह! कमाण्डर! क्या शेरे, लिसीकल एवं स्ट्राटोकल की फौजें भी उधर ही लगी हैं···?"

"हाँ, पीथन बढ़ो, सामने बढ़ो! वह देखो मकदूनिया का सेनापति क्रेटर आगे बढ़ रहा है। जूझ जाओ वीरो···।"

और क्षण भर में, क्रेटर की फ़ौजें थेबीज के अश्वारोहियों में पैठ गयीं। उस खड्ग-युद्ध में आहतों की आकृतियों में साक्षात् यमराज के दर्शन हो रहे थे। मनुष्यों के कटे हुये अंग-प्रत्यंगों के उस ढेर पर किसी सैनिक की कटी गर्दन में निकली आँख के रिक्त गढ़े से बहते हुए रक्त पर कमाण्डर क्रेटर के अश्व की एक टाप पड़ी और वह उछल पड़ा ज्यों उस सैनिक के शोणित ने उसमें रौद्र-नर्तन की तीव्रता भर दी हो।

एथेन्स की सेना के संचालकों में शेरे एक संभ्रान्त सैनिक तथा अनुभवी योद्धा था। इस पर भी उसमें मकदूनिया के सैनिकों के पहाड़ के सदृश चक्रव्यूह में प्रवेश पाने की क्षमता नहीं थी। लिसीकल एवं स्ट्राटोकल नामक एथेन्स के सैन्याधिकारियों की अयोग्यता के कारण उनकी और फिलिप की सेनायें बढ़ती चली जा रही थीं।

शिरोनिया में ग्रीस का गौरव मर्माहत हो रहा था। शिरोनिया में ग्रीस की सैन्य-शक्ति का वह प्राचीनतम इतिहास मकदूनिया के शिला-प्रवासी योद्धा टूक-टूक कर रहे थे। शिरोनिया में एथेन्स के वे वीर प्रवर सेनानी, वे प्रतिष्ठा-प्राप्त 'जनरल' और उनका वह युद्ध-कौशल छिन्न-भिन्न हो रहे थे। ग्रीस की सम्मिलित सेनाओं का वह सैन्य-संचालन, वह व्यूह, चतुर्दिक घेरने की उनकी वह योजना ध्वस्त हो रही थी।

२०

◇ ◇ ◇

डेमास्थनीज की जिह्वा पर साक्षात् शारदा का वास था। वह जब बोलता था तब एथेन्स की राज्य-सभा दहल उठती थी। वह जब भाषण करता था तब एथेन्स की जनता में औत्सुक्य-उत्फुल्ल समाविष्ट होता था। वह जब सभा-मंच पर खड़ा होता था तब श्रोता मूक वधिर से उसके उन विचारों को सुनते थे जिनमें आध्यात्म होता था, दर्शन होता था, रीति-नीति होती थी, कूटनीति होती थी, राजनीति होती थी, राज्य-संचालन का सम्बोधन होता था, सत्ता की, शक्ति की चेतना होती थी, इतिहास का गौरव होता था, भविष्यत् विधानों के प्रति जागरूक आस्था व उनके प्रति स्पष्ट सँकेत होते थे। उसकी भाषा में लालित्य और शब्दों में तलवार-सी काट होती थी···

और वही डेमास्थनीज अपनी उस तलवार-सी शब्द-काट के स्थान पर आज शेरोनिया के युद्ध-क्षेत्र में अपना लौह-खड्ग धारण किए हुये, सैनिकों के उत्कट वेश में, शत्रु के समक्ष, भाषा, शब्दों-वाक्यांशो से नहीं खड्ग से संहार कर रहा था।

उसके भाषण का ओज इतना चमत्कृत हो उठा था, उसमें ग्रीस के प्रति इतना स्नेह उमड़ आया था, स्वदेश के प्रति इतनी मार्मिकता भर

गयी थी कि वह विश्व-प्रख्यात व्याख्याता, वह विश्व-विख्यात दार्शनिक, वह विश्व-विख्यात राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ, वह विश्व-विख्यात विधानाचार्य, कहीं दूरस्थ, नीरवता-निर्जनता में बैठे अपने समसामयिक आध्यात्मिक, दार्शनिक, एवं मनीषियों के रूप में प्लेटो, साक्रेटीज एवं एरिस्ट्राटल को कल्पना-लोक में उतारकर, खड्ग-संचालन सहित युद्ध-रत था।

उसकी घोषणा थी कि फिलिप के रूप में सर उठाने वाले उस वन्य प्रदेशीय बर्बर आक्रान्ता का समूलोच्छेदन अनिवार्य है। उसने एथेन्स की उस विशाल-राजसभा में ग्रीस की सभ्यता, संस्कृति एवं इतिहास को साक्षी कर बारम्बार यह व्यक्त किया था कि फिलिप के सैनिक अभियान के निमन्त्रण के हेतु कोई सशक्त विरोध सम्मुख प्रस्तुत करना ही चाहिये। उसने अपने बुद्धि-कौशल, अपने व्यक्तित्व, अपनी कूटनीति, अपनी राजनीति के अनेक प्रभाव प्रकट कर फिलिप से, इससे पूर्व, एथेन्स की अनेक संधियाँ करायी ; अनेक गुप्त योजनाएँ निर्धारित कीं, अनेक रूप में सैन्य-शक्ति संचालन के विधान बनाये, एक सूत्रीय-संगठनीय योजनाओं द्वारा ग्रीस के विभिन्न शासकों को सम्मिलित किया, उन्हें सजग-सतर्क किया, उन्हें हुँकारा, उन्हें विवश किया कि वे एथेन्स के नेतृत्व में फिलिप का विरोध करें और उसी के प्रतिफल वह डेमास्थनीज की ही संयोजना थी कि शेरोनिया की रणस्थली पर विभिन्न सैन्य-शक्तियों को एकत्र कर वह फिलिप का विरोध कर रहा था। स्वयं भी उस उत्तेजना में खड्ग धारण कर सैनिकों की पंक्ति में लौह-लेखनी के स्थान पर लौह-खड्ग का, डेमास्थनीज उन्मुक्त प्रयोग कर रहा था।

डेमास्थनीज शेरोनिया के युद्ध में सैनिकों के साथ था—इसकी चर्चा युद्ध-स्थल में ही नहीं—उन विश्व की शासन-शक्तियों में भी थी जो टकटकी लगाये शेरोनिया के युद्ध के प्रतिफल की प्रतीक्षा कर रही

इस अश्व-सैन्य-शक्ति का संचालन उस समय अट्ठारह वर्षीय एलेक्जेन्डर कर रहा था। एलेक्जेन्डर के युद्ध की तीक्ष्णता से ग्रीस के योद्धा भयातुर हो उठे थे किन्तु युद्ध गति पर था।

इस स्थल के दाहिनी ओर के मोर्चे को फिलिप ने मंतव्य सहित निर्बल बनाया था। इसी स्थल पर फिलिप युद्ध-संचालन-कौशल के स्पष्ट दर्शन हुए। उसकी योजना के अनुसार एथेन्स की हहरती सेनायें इस ओर पैठ गयीं और वे मकदूनिया की सेना पर आक्रमण करने के लिये उसे दूर तक खदेड़ ले गयीं।

इस परिस्थिति में एक ओर तो फिलिप ने अपनी अश्व-सेना के कुछ चुने हुये सैनिकों को एथेन्स की सेना पर आक्रमण करने के लिये पीछे से भेजा और दूसरी ओर एलेक्जेण्डर की रण-हुँकार से थेबीज का बाँध टूट गया। एलेक्जेण्डर के अश्वारोहियों ने थेबीज के उन सबल सैनिकों एवं उस 'सेक्रेडलोसोस' को ध्वस्त कर दिया।

एथेन्स के उस जनरल स्ट्राटोकल ने जो मकदूनिया की ओर—मकदूनिया की ओर'······की हर्ष-ध्वनियों सहित आगे बढ़ रहा था, जब यह देखा कि थेबीज की सेना की पराजय के रूप में उसकी रीढ़ टूट चुकी है और वह फिलिप के कौशल से दोनों ओर से मकदूनिया की पराक्रमी पदाति एवं अश्व-सैन्य शक्ति से घिर गया है तो वह युद्ध-स्थल के अंतभाग में विवश पराजय को स्वीकार करने के हेतु अंतिम सांसें गिनने लगा।

एक हजार के लगभग सैनिक आहत हुये और दो हजार युद्ध-बंदी बनाये गये।

शेष सैनिक भाग गये और इन भागने वालों में सर्वाधिक द्रुत गति डेमास्थनीज की थी

एथेंस हारा, थेबीज हारा, ऐसींस, कोरन्थियन एवं फोसियन हारे—डेमास्थनीज की समस्त योजनायें, समूची शक्तियाँ विफल हो गयीं किंतु स्वतंत्रता की रक्षा के हेतु शेरोनियों में थेबीज का 'सेक्रेड-बेंड' जब तक धराशायी नहीं हुआ, निरंतर लड़ता रहा।

२१

◇ ◇ ◇

रात्रि विजयोन्माद एवं आह्लाद से परिपूर्ण हो गयी। वह मकदूनिया की विजय की मुस्कराहट थी जिस पर एथेन्स और थेब्रीज की पराजय का उदास—अंधियारा घिर आया था और तब उस आकुलता की अलस-उपेक्षा में वे हर्षोन्मत्त सैनिक मदिरा में मत्त होकर किलकारियाँ भर रहे थे। सैनिक छावनियों में सर्वत्र खिलखिलाहट गूंज रही थी। मदिरा की उस उद्दीप्ति सहित मकदूनिया के उन लोहाच्छादित दुर्धर्ष सैनिकों की आकृतियों के अट्टहास में तिक्तता का कौतुक नर्तन कर रहा था। रात्रि के उस निबिड़ अंधकार में यत्र-तत्र कैम्पों में मसालें जल रही थीं जिनके प्रकाश में सैनिकों की संरक्षक पंक्ति के सेनानियों के चलने से हिलते-डुलते लोह-वस्त्रों की झनझनाहट दूर तक एक चिड़चिड़ाहट उत्पन्न कर देती थी। उस पर मदिरा के उन्माद में उभरे सैनिकों के अट्टहास दिशाओं में कम्पन प्रकट कर रहे थे।

इसी निस्तब्ध अंधकार में लौह-वर्मधारी भयंकर रक्षक-योद्धाओं से घिरे एक कैम्प में फ़िलिप अपने हाथ में मदिरा-पात्र लिये हुये अनायास उच्चस्वर में प्रश्न कर बैठा—"ये कौन हैं ? यह कैसी चिल्लाहट है ?"

"हमारे विजयी सैनिक···।"

"और ये दाहिनी ओर कुत्ते की तरह कौन भौंक रहे हैं ?"

"सम्राट् ! वे थेबीज के युद्ध-बंदी हैं।"

सेनापति प्लूटार्क ने तत्परता से सविनय प्रकट किया।

"ओह ! वे लोग किधर बन्द हैं ?"

फिलिप ने उसी क्षण उठ खड़े होकर प्रश्न किया।

"महामान्य ! हमारी छावनी के बीचोंबीच पाँच कम्पों में।" सेनापति ने सैनिक अभिवादन सहित व्यक्त किया और फिलिप के साथ ही अपने पग मिलाता आगे बढ़ गया।

आगे-आगे फिलिप चल रहा था और पीछे प्लूटार्क, क्रेटर, नियार्च एवं अन्य सेनापति तथा संरक्षकों की एक टोली।

विजयी फिलिप मदिरा के उन्माद में गगनबेधी अट्टहास और प्लूटार्क से विनोद-वार्ता करता जाता था। उसके बलिष्ठ बाहुओं से जो मंद पवन स्पर्श कर रहा था उससे उसमें आनंद की चेतना अधिक तीव्र हो रही थी। तभी वह युद्ध-बंदियों के कम्पों में पहुँच गया।

"प्लूटार्क ! इनमें डेमास्थनीज है या नहीं ?" फिलिप ने व्यंग्य के तीक्ष्ण शब्दों में प्रश्न किया।

"नहीं सम्राट् ! वह भाग गया।"

"हः, हः, हः भाग गया। एथेन्स का नेता भाग गया। भगोड़ा कहीं का। शैरोनिया का युद्ध-नेता भाग गया। हः, हः, हः ! अपनी प्रभुता स्थापित करने वाले ऐसे नेताओं में इतनी ही स्थिरता होती है। असफल होने पर उनकी भूमि भी उनका साथ छोड़ देती है। उनके प्रशंसक ही उनकी टांग पकड़ते हैं…"

"मकदूनिया के विरुद्ध डेमास्थनीज के तर्क की तलवारें भी टूक-टूक होकर रहेंगी महामान्य !" सेनापति नियार्क ने व्यक्त किया।

"हः हः ! यह तर्क-वितर्क और भाषण बेकारों के काम हैं, देश को निकम्मा बनाने वालों के। डेमास्थनीज की अहम्मन्यता ने ही एथेन्स को

अपाहिज बना डाला। और अब वही मैदान छोड़कर भाग गया...", फिलिप हँस-हँसकर कहता जाता था और बंदियों का निरीक्षण करता जाता था। उसके वार्तालाप एवं चलने के रंग-ढंग से प्रतीत हो रहा था कि उस पर मदिरा का यथेष्ट प्रभाव हो रहा है।

"ओः सम्राट् ! भाग्य ने आगामेम्नन[1] की वीरता का जय-मुकुट तुम्हें प्रदान किया है तब क्यों थेरासाइट्स की भाँति अपने को गिरा रहे हो।" बंदियों में से एक व्यक्ति ने निर्भय और सरोष मुद्रा में प्रकट कर दिया।

फिलिप जैसे सोते से जाग उठा। वह चौंका। साथ के अन्यान्य सेनापति विकम्पित हो उठे।

तभी फिलिप की आकृति में प्रश्नात्मक रेखायें खिच आईं। प्लूटार्क ने वक्ता का परिचय पूछा।

"ओः देमेदास ![2]" कहते हुये फिलिप ने अपने गले की सब फूलमालायें तोड़कर फेंक दीं। वह गम्भीर और शांत हो गया। उसका वह समस्त आनंदोल्लास वहीं समाप्त हो गया और तुरंत ही उसने आदेश दिया—"तत्काल सब बंदियों को मुक्त कर दो...नियार्क !" और देमेदास को साथ लेकर फिलिप अपने कम्प में लौट आया।

---

१. आगामेम्नन—माइसीन के एशीन का सम्राट् जिसका नाम आगामेम्नन था, जिसने बारहवीं शताब्दी में ग्रीस की महान् एकता स्थापित की थी।

२. देमेदास—उस समय का प्रसिद्ध प्रवक्ता तथा शांतिदल का सदस्य जिसे बाद में फिलिप ने एथेन्स से शांति-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भेजा था।

२२

◇ ◇ ◇

विषम वर्षा के अनन्तर वातावरण में जो स्थिरता आती है तो जैसे प्रद्योतन प्राप्त होता है; नीलाकाश में जब विद्युत कौंध कर विलीन होती है तो पीछे से एक उदासी, एक निश्चितता छोड़ देती है; ज्वालामुखी के विस्फोट के कम्पन से जब धरती दहल उठती है तो उससे कहीं नाश और कहीं विध्वंस प्रकट होता है, तभी उन ध्वस्त खंडहरों पर खड़े होकर विषय-विरागमय शान्त-मौन के दर्शन कर मन तनिक आस्वस्त होता है; अन्तराल की तीव्र ज्वलन की परिस्थितियों के अनन्तर सदा ही आत्म-तोष की अलस उदासी घिर आती है; प्रतिपीड़न के अनन्तर की प्रति-घोषणा से प्रकट सान्त्वना प्रणीत लक्ष्य की पूर्ति-सी प्रतीत होती है; अवशता-आकुलता के शमन में ही मृदुता, स्निग्धता, निराकुलता का सन्निवेश होता है और तभी शेरोनिया के युद्ध के अनन्तर सर्वत्र ही शान्ति-शान्ति की आकांक्षा ने एथेन्स सहित ग्रीस के समग्र वायुमण्डल को सन्तोषामृत पान कराया।

निगूढ़ सत्यता का तिरस्कार कर अनेक अवसरों पर व्यक्ति के अहंकार की जड़ता से जो परिस्थितियाँ कर्कश हो जाती हैं तो उनका प्रभाव समूह पर होना स्वाभाविक ही होता है। फिलिप के सैनिक-अभियान

की हुंकार में ग्रीस का भूखण्ड प्रकम्पित तो हुआ किन्तु एथेन्स में डेमास्थनीज की अहम्मन्यता से वह प्रथम तो उपेक्षणीय ही बना रहा। डेमास्थनीज, एथेन्स की राजसभा में एक ओर फिलिप का विरोध करता रहा; उसे भला-बुरा कहता रहा; उसके विरुद्ध योजनायें बनाता रहा, शांति की तत्कालीन निष्क्रियता का पाठ पढ़ाता रहा और उधर फिलिप देश पर देश विजित करता रहा। शत्रु की प्रत्यञ्चा की टंकार जब राज्यान्तर्गत प्राचीरों को दहलाने लगी तब संगठन की ढाल लेकर डेमास्थनीज शेरोनिया के युद्धस्थल पर आ खड़ा हुआ किंतु वहाँ उसकी वह ढाल टूक-टूक हो गई और आक्रमण-प्रत्याक्रमण की तीव्र खड्ग भी। और तब उस पलायन में समस्त ग्रीस ने डेमास्थनीज की समस्त रीति-नीति की असफलता के स्पष्ट दर्शन किये।

तब मस्तिष्क की चिड़चिड़ाहट में डेमास्थनीज ने भी विश्व के अन्य तद्वत् जन-नायकों की ही भाँति तर्क की अतार्किकता का प्रदर्शन करना चाहा किंतु किसीने सुना नहीं।

हाँ, डेमास्थनीज के समकक्ष अन्य बौद्धिक जनों ने स्थिति का गंभीरता-पूर्वक मनन किया। तथ्य की सत्यता को स्वीकार किया। मकदूनिया के पराक्रम का स्वागत किया। फिलिप के कौशल की प्रशंसा की। उसमें देमेदास भी था।

ग्रीस में सदैव ही सैन्य-शक्ति की ही भाँति बुद्धि-बल की भी प्रचुरता रही है। उस एक ही समय में आगे-पीछे डेमस्थनीज, देमेदास, प्लेटो, साक्रेटीज, एरिस्ट्राटेल सदृश विश्व के महान् तार्किक, महान् दार्शनिक, महान् जनप्रिय व्यक्तियों का प्रादुर्भाव ग्रीस में हुआ था।

युयुत्सा की प्रत्यञ्चा में जो युद्धोत्तेजना के बाण डेमास्थनीज ने छोड़े थे उनके घात-प्रतिघात का स्पष्ट प्रतिफल शेरोनिया ने प्रकट कर दिया था और अब प्रचंड युद्ध के स्थान पर शांति के सरल-तरल यूष की सर्वत्र कामना थी।

यों युद्ध की विभीषिका, हिंसा के ताण्डव-नर्तन, युद्धोन्माद की प्रदीप्ति के अनन्तर की जय-पराजय के प्रकट प्रभाव की सीमायें केवल युद्धोपकरण अथवा योद्धा पर ही केन्द्रित रहती हों ऐसा कभी नहीं होता। उसका प्रत्यक्ष प्रभाव, उसके अनन्तर का प्रभाव प्रत्याशी जनता पर ही सर्वाधिक प्रकट होता है। उसका तीव्र प्रभाव जनता के जन-नायकों पर पड़ता है। हिंसक वृत्ति को जागरूक रखने वालों के स्थान पर तब शांति एवं अहिंसा का निरभ्र नीलाकाश सर्वत्र ही प्रस्फुटित होता है। और तब जन-जन के नायक त्रास को तोप में परिवर्तित करने की चेष्टा में रत होते हैं।

यों, साक्रेटीज का कार्य-क्षेत्र समाज-गत राजनीति से पृथक् एक कार्य-विशेष, एक वर्ग विशेष में था। उसका वह बौद्धिक स्वरूप दर्शन और अध्यात्म तक सीमित था किंतु शेरोनिया के युद्ध से वह भी हिल उठा। उसने देखा कि उसके साथी, उसके नगरवासी, युद्ध के अनंतर शांति की कामना कर रहे हैं। उसने अनुभव किया कि हेलास में संगठन-शक्ति का प्रभात प्रस्फुटित हुआ है। किंतु समूचे ग्रीस की एकता के जिन स्वप्नों को उसने अपने कल्पना-लोक में उभार रखा था, वे सब विनष्ट हो गये थे।

न प्रवक्ता-राजनीतिक डेमास्थनीज ने, न ही वित्तीय-सहकारी यूबुलस ने ही वस्तुस्थिति की गम्भीरता, परिस्थिति की नग्न सत्यता, भविष्य की निर्विवाद स्पष्टता को ही पहचाना। किंतु साक्रेटीज ने समय, वातावरण व परिस्थित की यथार्थता का स्पष्टीकरण अनिवार्य माना।

साक्रेटीज ने मकदूनिया की स्थिति ग्रीस में और ग्रीस की स्थिति तात्कालिक विश्व में आँकी। पहले तो वह राजनीति के कलुषित वर्ग-भेद से अपने को अछूता रखना चाहता था परन्तु उस कैरोमन ने विवश किया कि वह भी अपना मत व्यक्त करे। जो सम्भावित था, ग्रीस की

राजनीति के कर्मठ कार्यकर्ता साक्रेटीज पर हँसे ।

उन्होंने प्रचारित किया कि बिना क्रियात्मक अनुभव के कैसे कोई साधारण पढ़ने-लिखने वाला व्यक्ति गहन राजनीति में अपनी टांग अड़ा सकता है और वह भी द्वितीय श्रेणी का प्रतिष्ठित । किन्तु इस प्रकार के निर्भय व्यक्तित्व कभी चिन्ता नहीं करते । साक्रेटीज ने अपने अभिमत को स्पष्ट करते हुए फिलिप को एक पत्र लिखा :

दिग्विजयी फिलिप महान् !

अभ्यर्थना सहित मेरी बधाई स्वीकार करें ।

ग्रीस और मकदूनिया के प्रश्न को लेकर आज मैं अपने कुछ अभिमत स्पष्टतः व्यक्त करने जा रहा हूं और आशा करता हूँ कि आप उन पर गम्भीरतापूर्वक मनन कर उनको क्रियात्मक रूप देने की चेष्टा करेंगे ।

वस्तुतः ग्रीस के इन छोटे-छोटे राज्यों की अनेकता सर्वविदित है । एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण के स्थान पर जो ये द्वेष, कलुष, विग्रह में दिन-रात लीन रहते हैं उसका स्पष्ट प्रभाव इन्होंने अनेक युद्धों सहित मेरोनिया में भी देख लिया ।

ग्रीस की यह हेय स्थिति अब विश्व-विदित है । यह कितना अपमानजनक है, कितना निम्न-स्तरीय !

किन्तु अब समय आ गया है कि ग्रीस की एकता स्थापित की जावे ।

अब एक व्यक्ति उत्पन्न हो गया है जो अपने मस्तिष्क, अपनी शक्ति एवं अपने स्वर्ण से उस एकच्छत्र केन्द्रीय शासन का अधिपति हो सकता है । अब हमारे समक्ष फिलिप महान की शक्ति का प्रादुर्भाव हो चुका है ।

मेरा ध्यान है कि इस प्रकार नगर-शासनों की स्वतंत्रता एवं प्रभु-सत्ता के प्रतिष्ठापन के अनन्तर भी ग्रीस की एकता सम्भावित है जिसका एक नेता हो और एक नेतृत्व में सभी की अभिलाषाओं की पूर्ति हो ।

सबके एक विधान हों और एक उद्देश्य ।

आप उस सबके लिये सक्षम व समर्थ हैं। आपके केन्द्रीय शासन में ग्रीस के महत्त्वपूर्ण सृजनात्मक कार्यक्रमों की पूर्ति की आशायें निहित हैं।

उस प्रकार के सृजनात्मक कार्यक्रम की पृष्ठभूमि—महत्वाकांक्षाओं अथवा विजयाकांक्षाओं की न होगी अपितु उस सबकी रूपरेखा क्रियात्मक जागरूकता की होगी और उसके द्वारा ही समाज में प्रकट अनीतियों को रोका जा सकेगा।

हम देखते हैं कि ग्रीस में किस प्रकार इधर अनेक वर्षों से जनसंख्या वेग से बढ़ रही है। ग्रीसवासी सशस्त्र डाकुओं के कुरूप में यत्र-तत्र घूमते हैं—अनीति-अनाचार फैलाते हैं। ये किसी स्थान के नागरिक नहीं होते। ये किसी भी राज्य की ओर से किराये पर युद्ध कर सकते हैं। कोई भी लड़ाकू राज्य जिसे मनुष्य-शक्ति की आवश्यकता हो इन्हें क्रय कर सकता है। शनैः-शनैः ये समाज का एक गलित अंग बनते जा रहे हैं।

अस्तु, इस जनसंख्या की बढ़ोतरी के हेतु एक पृथक् स्थान बसाने की तत्काल आवश्यकता है। इस प्रकार के स्थान को आक्रमण द्वारा अधिकार में करना चाहिये। अब समय आ गया है जब हेलास को पर्सिया पर सैनिक अभियान करना चाहिये और आपको उसका नेतृत्व। आपको हेलास के योद्धाओं का शक्ति-संचयन करना चाहिये। वह एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

यदि आप उस महान् शासक के समूचे साम्राज्य को अधिकृत न भी करें तो कम से कम 'एशिया माइनर' को—सिलिसा से सिनोय तक—हेलेन के राज्य में सम्मिलित करें जिसका सौख्य हेलेन के वासियों को प्राप्त हो सके।

मेरा विश्वास है कि मेरी यह आशा पूर्ण होकर रहेगी।

मेरा यह पत्र किसी विजेता, किसी व्यक्ति विशेष के समक्ष आत्म-समर्पण अथवा चाटुकारिता नहीं है अपितु एक यथार्थवादी की दृष्टि में

नग्न सत्य है, जिसको उसने देखा है और देख रहा है।

सविनय

इसाक्रेटीज

फिलिप अपने महल में एकांत कक्ष में बैठा अपनी महाराज्ञी ओलिम्पियास से किसी प्रश्न पर विवाद कर रहा था। निकट ही उसका पुत्र एलेक्जेन्डर शालीन मुद्रा में बैठा था और अपने माता-पिता के विग्रह के शमन के हेतु चिन्तित था। शेरोनिया की समस्त विजय और हर्ष ग्रह-विग्रह की अशांत परिस्थितियों में विनष्ट हो रहा था तभी एक अंगरक्षक ने एक पत्र लाकर फिलिप को दिया।

गम्भीरतापूर्वक फिलिप ने साक्रेटीज का पत्र पढ़ा और युवराज एलेक्जेन्डर की ओर बढ़ा दिया।

२३

◇ ◇ ◇

अलेक्जेन्डर अपने कतिपय सैन्य-अश्वारोहियों के साथ प्रातः-कालीन वातावरण की शांति का रसास्वादन करने पूर्वीय दिशा की ओर जा रहा था। वस्तुतः उन अश्वारोहियों में सभी समवयस्क सैनिक-वेशधारी तरुण, अलेक्जेन्डर के साथी थे किंतु प्रतिदिवस की भांति अलेक्जेन्डर आज न विनोद-वार्त्ता कर रहा था न प्रातःकालीन मन्द समीरण के स्पर्श से आह्लादित ही हो रहा था। उसकी आकृति में गहन चिंता-रेखायें झलक आयी थीं।

उसके मस्तिष्क में दो प्रसंग एक साथ उलझे हुये थे। एक तो था साक्रेटीज़ का पत्र जिसे उसके पिता ने उसे दिया था। साक्रेटीज़ के पत्र में जिस प्रकार मकदूनिया के ज्वलंत वैभव की प्रत्याशा की गयी थी और जिस प्रकार ग्रीस में ही नहीं आगे एशिया में भी उसके प्रसार का निर्देश था, उससे वह अनायास ही अन्तर्मन में प्रफुल्लित हो रहा था। जिन महत्वाकांक्षाओं के दिवास्वप्न वह अहर्निशि देखता आ रहा था, वे जैसे साक्रेटीज़ के पत्र में मूर्तित हो रहे थे। जिस प्रकार उस महान् चिन्तक एवं विचारक ने वस्तुस्थिति की सत्यता को परखा था, इतिहास के संकेतों की गूढ़ता का मनन किया था, उससे वह अलेक्जेन्डर

अत्यधिक प्रभावित हो रहा था ।

ग्रीस में जो घटनायें, चलचित्र की भांति एक के पश्चात् दूसरी आ-आकर विलीन हो रही थीं और उससे जिस प्रकार ग्रीस के ही नहीं समस्त विश्व के भविष्यत् विधान संश्लिष्ट एवं सन्निद्ध हो रहे थे, उन सब का मनन कर अलेक्जेन्डर अपनी भावी कल्पनाओं के उद्रेक में अधिकाधिक आन्दोलित हो रहा था ।

बालपन से आज तक के उसके वे स्वप्न, वे कल्पनायें कि यह मकदूनिया की पर्वत-मालाओं को पार कर विश्व-विजय करेगा, सुदूर पूर्व तक जावेगा, सुदूर पश्चिम तथा उत्तर तक । उसके राज्य की सीमा मकदूनिया नहीं समग्र पृथ्वीतल होगी । वह मकदूनिया की विजय-ध्वज सब से पहले पर्सिया पर, ईरान पर फहरावेगा । ग्रीस व मकदूनिया का इतिहास साक्षी था कि ईरान ने अपने सैनिक अभियान में अलेक्जेन्डर के देश को पद-दलित किया था ।

और आज वह यह सब चिन्तना कर अत्यधिक प्रफुल्लित हो रहा था कि इतिहास निर्देश कर रहा है, घटनाक्रम का वेग व्यक्त कर रहा है, साक्रेटीज़ के स्वरूप में वह भविष्य वाणी है कि उसे उत्तरापथ के और आगे तक जाना है ।

किंतु वह एक उन्माद छिछला नहीं, हास्य का नहीं—गम्भीरता का था और तभी अलेक्जेन्डर गम्भीर बना हुआ था ।

उससे अधिक गम्भीर प्रश्न जो उसके मस्तिष्क को आच्छन्न किए हुए था ; उसकी तीक्ष्णता विश्व-विजय एवं विश्व-युद्ध से भी तीव्रतर थी ! मकदूनिया के विजयी सम्राट् फिलिप अलेक्जेन्डर के पिता एवं मकदूनिया की परम रूपवती सम्राज्ञी ओलिम्पियास—अलेक्जेन्डर की माता—के पारस्परिक कलह से उत्पन्न चिन्ता से मकदूनिया का युव-

राज, ग्रीस का भावी शासक, विश्व का भावी विजेता विचलित हो उठा था। वैयक्तिक स्वानुभूतियों की जटिलताओं का संसारगत क्रिया-कलापों से अधिक विषम होना तो प्रकृति है—स्वभाव। अस्तु, अलेक्जेन्डर तात्कालिक संयोज्य परिस्थितियों की विषमताओं में उलझा, शिथिल-सा अश्व पर बैठा आगे बढ़ रहा था।

उस द्वितीय अनियन्त्रण का संकेत तो साक्रेटीज के सदृश दार्शनिक-चिन्तक भी नहीं दे पाया था।

जिस प्रकार फिलिप, अलेक्जेन्डर तथा मकदूनिया-ग्रीस की विजय-पराजय; युद्धगत आनन्दोल्लास-विभीषिकाओं; भविष्यत् शासन की संवैधानिक व्यवस्थाओं-कल्पनाओं के तर्क-कुतर्क में उलझे थे, उसी प्रकार एक नारी की चारित्रिक तीव्रता की उद्दाम घहरन—साम्राज्ञी ऑलिम्पियास के जीवन के वैयक्तिक प्रभाव से—फिलिप, अलेक्जेन्डर तथा मकदूनिया ग्रस्त थे।

*

यह वही समय था जब ग्रीस की ही भाँति भारत में सर्वत्र कलह-विग्रह, राज्य सीमाओं के विस्तार की प्रतिद्वन्द्विता, शासन की अव्यवस्था, अपरूपता, भिन्नता फैली हुयी थी। एकसूत्रीय केन्द्रीय शासन के स्थान पर अनगिन जनपद विग्रह के विभिन्न वाद्यों में शूरंम्मन्यता के स्वर अलाप रहे थे।

केवल उत्तरापथ वाहीक प्रान्त की स्थिति की तुलना तात्कालिक ग्रीस से की जा सकती थी! उत्तरापथ के वे विभिन्न जनपद न अतीत की गरिमा में थे न भविष्य की जागरूक चिन्तना में! कभी बाह्य शत्रु भी उनके उत्तरापथ के प्राचीरों को हिला सकता है, इसकी उन्हें कदापि चिंता न थी। भविष्य उनको निहार रहा है, इसे वे नहीं देख रहे थे।

२४

◇ ◇ ◇

पेला के भव्य राज-प्रासाद में मध्यान्तर की नीरवता छायी हुयी थी। राज-प्रासाद के सिंहद्वार से लेकर उच्चस्थ अलिंदों तक स्थान-स्थान पर मकदूनिया के लौह-पुरुष अपने सैनिक वेश धारण किये, लोहे के ऊँचे-ऊँचे टोप पहने, दिवस की दोपहरी में अपने लम्बे खड्गों की चमक झलकाते, पग-पग स्थिर होकर टेकते, सतर्क भाव से पहरा दे रहे थे।

धरतीतल पर शान्ति विराज रही थी और उस निरभ्र नीलाकाश में यत्र-तत्र पक्षियों के समूह उड़ते दिखायी दे जाते थे। दोपहरी खिलखिला रही थी। समस्त संसार दिवस के मध्याह्न में अपने दैनिक जीवन में पूर्णतः व्यस्त था। मकदूनिया का सम्राट् फिलिप शेरोनिया के युद्ध के अनन्तर भावी कार्यक्रमों में उलझा हुआ था। उसे विजय के अनन्तर निर्माण करना था। कुछ विशिष्ट योजनाओं को कार्यरूप में परिणत करना था। अपने शत्रुओं का समूलोच्छेदन करना था। अपनी योजना के अनुसार थेबीज को कुचल डालने को वह तत्पर हो रहा था अब भी एथेन्स के प्रति वह सदाशय था तथा सरलता का व्यवहार करना चाहता था।

वह पेला की राजसभा में अपने कुशल सेनापतियों एवं युवराज

एलेक्जेण्डर से घिरा बैठा था। प्रसंग वही था—साक्रेटीज के पत्र में निर्दिष्ट पर्सिया-अभियान की रूपरेखा पर विचार करना। सैन्य का पुनर्गठन। पर्वतीय जातियों में प्रोरेस्ट्रियन एवं लिनसेस्टियन के बलिष्ठ योद्धाओं से मकदूनिया की पदाति एवं अश्वसेना को सुसज्जित करना। युद्ध-संचालन के नवीन अनुभवों पर वाद-विवाद, नवीन अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग एवं विजित राज्यों के सैनिकों का संचयन कर अपनी प्रबल सैन्य-शक्ति सहित पर्सिया पर आक्रमण करना।

अलेक्जेण्डर मौन बैठा था तथा सभी के वार्तालाप सुन रहा था। वह गुढ़-गम्भीरता में अपना कोई अभिमत व्यक्त नहीं कर रहा था किन्तु उसके रोम-रोम में पुलक-संचार हो रहा था। ज्यों आगामी सैनिक-अभियान के रूप में उसे कोई इच्छित वरदान प्राप्त हो रहा था।

राज-सभा के प्रवेश-द्वारों पर चार-चार सशक्त सशस्त्र प्रहरी अपने भालों को ऊँचा उठाये इधर-उधर डोल रहे थे। चौबिस अंग-रक्षकों की वितरित पंक्तियाँ फिलिप के सिंहासन के चारों ओर सतर्क होकर सभा के कार्य-संचालन को मौन होकर देख रही थीं।

उस सब व्यस्तता में फिलिप का अतर्मन ज्यों दूर भाग रहा था। उस सब तर्क-वितर्क पूर्ण वाद-विवाद के मध्य भी उसका हृदय कहीं अन्यत्र अवस्थित था। वह तुरन्त उस मन्त्रणा-सभा को विसर्जित करना चाहता था किन्तु प्रसंग की गंभीरता के कारण उचटते मन को अनेक बार प्रयत्न करके वह केन्द्रित करने की विफल चेष्टा कर रहा था। वह उस समय किसी की चिंता और किसी दूसरे की प्रतीक्षा कर रहा था।

अपने सैन्याधिकारियों से घिरे होकर भी दो सेनापतियों की अनुपस्थिति से वह उद्विग्न था। उनमें एक का ध्यान कर उसमें चिन्ता की रेखायें खिंच आती थीं, ज्यों रोष भर आता हो और दूसरे का ध्यान कर प्रतीक्षा की निरीहता में वह आन्दोलित हो उठता था।

तभी अनायास क्रेटर ने सुझाव प्रस्तुत किया—"उपयुक्त हो तो

सम्राट् ! पर्मेनियो को, साथ ही कुछ अन्य 'जनरल' भी, पहले से ही भेज दें जिससे हमें सुगम मार्ग प्राप्त हो सके।"

उस समय पर्मेनियो की अनुपस्थिति फिलिप को यों ही आन्दोलित किए हुए थी, उस पर क्रेटर के उस सरल सुझाव ने जैसे तीक्ष्ण व्यंग्य का कार्य किया और वह तिलमिला उठा।

फिलिप जानता था कि वही नहीं उसके समक्ष उपस्थित उसका पुत्र अलेक्जेण्डर तथा ये अन्य सैन्याधिकारी भी जानते हैं कि पर्मेनियो इस समय कहाँ होगा ?

फिलिप का वश चलता तो वह पर्मेनियो को कच्चा चबा जाता। फिलिप का वश चलता तो वह पर्मेनियो की हड्डियों का अवशेष भी शेष न रहने देता। फिलिप का वश चलता तो वह पर्मेनियो के वंश का नाश कर देता किंतु वह अवश था। वह दिग्विजयी सम्राट् कहीं इतना असमर्थ था कि एक व्यक्ति को छू नहीं सकता था।

और उस समय सेनापति क्रेटर के उस सुझाव पर फिलिप सोचता रहा—पर्मेनियो यहाँ से दूर हो जावेगा तो उचित होगा किंतु वह जावेगा नहीं। वह शेरोनिया के युद्ध में भी उसके साथ नहीं गया था। उसे कोई जाने नहीं देगा। वह कौन है—इसका ध्यान कर फिलिप की रक्तवाहिनी शिराओं में शोणित के स्थान पर हिम-जल प्रवाहित होने लगता था। फिलिप ही नहीं, अलेक्जेण्डर भी पर्मेनियो का नाम सुनकर आवेश में आरक्त हो जाता था।

पर्मेनियो मकदूनिया की सेना में एक परम रूपवान, यशस्वी व पराक्रमी वीर था। उसके व्यक्तित्व के आकर्षण से अधिक आकर्षक उसके शौर्य-पराक्रम की गाथा थी। इसके साथ ही उसकी आकृति में कुछ ऐसी मोहिनी थी कि वह पल भर में किसी को भी अपना प्रशंसक बना लेता था। उसका स्वभाव इतना मृदु, इतना स्निग्ध था कि एक बार भेंट होने के अनन्तर उसका प्रभाव मानस-पटल से दूर ही न होता

था । उसकी गर्वीली भोली आकृति ने उसे अल्पकाल में ही सैनिक से सेनापति का सम्मान प्रदान किया था और वह फिलिप के अन्तरङ्ग गृह-रक्षकों में से एक था ।

इधर कुछ ऐसा बन पड़ा था कि फिलिप उसकी छाया से काँप जाता था। कुछ ऐसा कारण था कि फिलिप की खड्ग के एक भरपूर हाथ से काम तमाम हो जाने की परिस्थिति में भी फिलिप उसे छू नहीं सकता था। जितना ही फिलिप पर्मेनियो को पेला के प्रासाद से दूर रखना चाहता था कोई अन्य उसे पेला के अन्तरतम में ही रखना चाहता था ।

वह अवशता फिलिप की ही नहीं उस समय समूचे मकदूनिया की बन पड़ी थी। समस्त मकदूनिया पर्मेनियो से राजकुल को मुक्ति दिलाना चाहता था किन्तु प्रत्येक असमर्थ था ।

अलेक्जेण्डर पर्मेनियो को टूक-टूक करने पर उद्यत था किन्तु उसमें भी एक ऐसे मोह की विवशता थी कि वह निरीह दर्शक के रूप में पर्मेनियो से व्यक्ति को उसी प्रकार वैभवपूर्ण गति-विधि से बेला के राज-प्रासाद के एक-एक कोने में स्वच्छन्द, निर्बन्ध घूमते देखता था ।

अस्तु, उस क्षण क्रेटर की बात प्रकट हुई और ज्यों शून्य में विलीन हो गयी। पर्मेनियो का प्रसंग वायु की लहरों के साथ आया और उसी झोंके के साथ विलीन हो गया और तत्काल पर्मेनियो प्रकट हुआ । वह राजभवन के पीछे के द्वार से राजप्रासाद के अन्तरतम भाग से ही आ रहा था। उसको देखकर ज्यों प्रत्येक में एक उद्रेक भर गया। फिलिप उसी प्रकार अपनी विनत ग्रीवा में शांत बैठा रहा। उसने आँखें उठाकर उसे देखा भी नहीं। अलेक्जेण्डर उठा और एक ओर चल दिया। वार्तालाप नहीं—उस मंत्रणा की गम्भीरता ज्यों तत्काल विलीन हो गयी और एक विचित्र-सा प्रसंग सब के मन में पैठ गया। मानव की शक्ति कहाँ असहाय है—यह जैसे राज-सभा के एक-एक कोण से प्रतिभासित हो रहा था।

वैसे-से वातावरण में पर्मेनियो प्रकट हुआ और विलीन भी।

तत्क्षण पर्मेनियो जिस ओर गया था उसी ओर से सेनापति अटेलस ने प्रवेश किया जिसे देखते ही फिलिप जैसे खिल उठा। समूचे वातावरण में जैसे पुनः चेतना व्याप्त हो गयी।

अटेलस के आने के अनन्तर शीघ्र ही, मंत्रणा-गोष्ठी समाप्त हो गई और फिलिप अटेलस के साथ एक ओर चला गया।

"तुम अटेलस को समाप्त नहीं कर सकते, अलेक्जेण्डर?"

"हाँ, जब मैं पर्मेनियो को नहीं समाप्त कर सकता तब अटेलस को भी नहीं कर सकता।···"

"अलेक्जेण्डर···।"

"माँ···"

"यह मैं चाहती हूँ।"

"किन्तु माँ, इसका दोष क्या है?"

"मैं अपनी लक्ष्य-पूर्ति में किसी तर्क को स्थान नहीं देती, यह तुम जानते हो···।"

"और मैं यह भी जानता हूँ कि वैसा ही संसार की प्रत्येक स्त्री करती है।"

"छोकरे! संसार की स्त्रियाँ क्या करती हैं, इसका तू लेश भी नहीं जान सकता···।"

"तब मुझे अपनी बुद्धि का उपयोग तो करना ही चाहिये।"

"तब क्या तू समझता है कि बुद्धि का उपयोग ही जीवन की सत्यता, जीवन की यथार्थता है? कदापि नहीं···कभी नहीं। हृदय का अधिकार-क्षेत्र ही मानव का, मानव से, मानव के लिए—सत्य-स्वरूप है···।"

"वह अधिकार-क्षेत्र, जहाँ जीवन की सात्विकता शून्य-बिन्दु पर लक्षित है ? माँ, वह वही अधिकार-क्षेत्र है जहाँ तुम्हारा...।"

अलेक्जेण्डर ! हट जा मेरे सामने से । निकल जा। मुझसे तर्क करने की सामर्थ्य...।"

"माँ ! तर्क को तर्क से काटो । रोष से नहीं । क्या तुम अपने पुत्र पर भी अन्याय की प्रत्यंचा खींचना चाहती हो। अपने एकमात्र पुत्र पर। अपने अलेक्जेण्डर पर। और वह भी इस आवेग-आवेश सहित। माँ...माँ ...मैं जाता हूँ।" कहकर अलेक्जेण्डर चलने को प्रस्तुत हुआ।

तत्काल ही ज्यों ओलिम्पियास की आरक्त आकृति में वात्सल्य की मृदुता की धवलता चित्रित हो गयी। उसकी सरोष भङ्गिमा में निमिष मात्र में, मोह के प्रति समर्पण एकाग्र हो आया और वह पुकार उठी—
"एलेक्जेण्डर !"

अलेक्जेण्डर लौटा। वह अपनी मां के स्वभाव से भली प्रकार परिचित था। वह अपनी माँ को प्राणों से अधिक प्यार करता था। वह आगे बढ़ा। ओलिम्पियास आगे बढ़ी और उसने पुत्र के भाल पर ममत्व की रेखा खींच दी।

"अलेक्जेण्डर ! तुम मेरा कहना मानोगे, न ?" प्रकट करते हुये माँ ने पुत्र को पृथक् किया।

"नहीं माँ ! कदापि नहीं। अब तुम्हें मेरा कहना मानना होगा। तुम्हें ...मेरा यह मोह, मोह के प्रति अपने ऐसे उदात्त आकर्षण को भी अब त्यागना होगा। माँ, तुमने कभी यह सोचा कि तुम सम्राट् फिलिप की पत्नी के अतिरिक्त आज तुम युवक एलेक्जेण्डर की मां भी हो। सोचो, मां ! सोचो। आज मकदूनिया के अणु-अणु से यह ध्वनित हो रहा है कि उसकी सम्राज्ञी ओलिम्पियास को हृदय के उस अधिकार-क्षेत्र को तिलांजलि देकर बुद्धि की गरिमा का आश्रय लेना ही चाहिये। आज जहाँ मकदूनिया के वैभव की पताका सर्वत्र लहरा रही है वहाँ उसका राज-

प्रासाद स्वतः उत्पीड़न के अश्रु झलका रहा है।"

"बच्चे ! तुम्हारे अधिकार की सीमायें कम हैं। इससे बहुत कम। तुम्हें जानना चाहिये कि परम्परानुसार माता-पिता के वैयाक्तिक जीवन की सन्तान को नहीं अपितु सन्तान के व्यक्ति की माता-पिता को चिन्ता करनी होती है।

"तब तुम्हारे हृदय के अधिकार-क्षेत्र की बात थोथी है मां ! हृदय और अधिकार ? हृदय पर किसका अधिकार होता है ? हृदय के समक्ष समस्त अधिकार विदीर्ण हो जाते हैं। तुम सोचो, यह मेरे हृदय की बात है जो मैं कह रहा हूँ, मां से कह रहा हूँ न कि अधिकार की टंकार खींच रहा हूँ। वह कार्य पिता का है।"

"उनके अधिकार की सीमायें भी बँधी हुई हैं, अलेक्जेण्डर।"

"उनकी ही नहीं प्रत्येक पति की, प्रत्येक पुरुष की।"

"नहीं, पुरुष के समक्ष प्रत्येक नारी की और पति के समक्ष प्रत्येक पत्नी की, क्यों न ! और पूछते हो अटेलस का दोष क्या है ?"

'हाँ, माँ वह दोष अटेलस का नहीं···"

"तब वह दोप फिलिप का है···" ओलिम्पियास की आकृति में तत्काल क्रोध की प्रत्यंचा खिच आयी।"

"माँ ! यह कहने का अधिकार तुम उसके पूर्व समाप्त कर चुकी हो···।"

"निष्प्रयोजन विवाद मत करो, बच्चे ! मुझे तुमसे भी कोई आशा नहीं, जाओ। मैं अपने अधिकार स्वयं परख लूंगी। मुझे एरिस्ट्राटेल की दार्शनिकता नहीं चाहिये। तुममें तो वह जैसे रक्त में भर गयी है। जाओ, मैं अपना अपने आप देख, सुन, समझ लूँगी।···मैं कहती हूँ जाओ," कहने हुये ओलिम्पियास स्वयं उस स्थान से हट आयी जहाँ वह पुत्र पर कुछ आदेश आरोपित करना चाहती थी।

अलेक्जेण्डर विलम्ब तक उस स्थान पर चित्रवत्, निर्वाक् व मौन

खड़ा रहा। अपने परिवार का भविष्य अन्धकारमय देखकर उसका समस्त शौर्य, पराक्रम, वीरत्व, प्रभुता, सभी भविष्यत् स्वप्नाकांक्षायें, पल भर में नष्ट-विनष्ट हो गयी थीं। तब अपने विकर्षण सहित वह विलम्ब तक उसी स्थल पर स्थिर खड़ा रहा और अवचेतना में अपनी दृष्टि शून्य में टिकाये रहा।

तत्काल ही समक्ष से उसका पिता फिलिप निकला और पुत्र को देख कर अनायास पुकार उठा—"अलेक्जेण्डर !"

अलेक्जेण्डर ने तुरन्त ही सुस्थिर होकर पिता को उत्तर देना चाहा किन्तु उसके साथ अटेलेस को देखकर वह निरुत्तर व मौन हो गया। फिलि। भी अटेलेस के साथ आगे बढ़ जाने की शीघ्रता में था अतः चुप-चाप आगे चला गया।

२५

◇ ◇ ◇

"क्ल्यूपेट्रा।"

"सम्राट्।"

"क्ल्यूपेट्रा! बोलो, कहो, उत्तर दो।"

"आप इतने अधीर क्यों हैं? मैं जानती हूँ कि मेरे प्रति आपका असीम स्नेह उमड़ आया है। मैं मानती हूँ कि आपके इस अनुराग में हृदय की चीत्कार है। किन्तु मुझमें भी एक नारी की कसक है जो एक नारी को पहचान सकती है। जो जान सकती है कि ओलिम्पियास को—उसके उन उद्धत व्यवहारों के होते भी—उसे कितनी वेदना होगी। यदि मैं अपने को ओलिम्पियास के स्थान पर रक्खूँ तो······।" लावण्य के कुसुम-गुच्छ-सा सौंदर्य समेटे क्ल्यूपेट्रा को अनायास मकदूनिया के सम्राट् फिलिप ने टोक दिया।

"क्ल्यूपेट्रा! कभी नहीं, कदापि नहीं। तुम क्षण-भर के लिये भी उस अधम नारी के स्थान पर अपने को रखने की मत सोचना। क्या तुम्हारे सदृश ललितांगी भी ओलिम्पियास के चरण-चिह्नों पर चलने की कल्पना कर सकती है? क्ल्यूपेट्रा! क्या कह गयीं तुम? कितना दुःख हुआ मुझे, यह सुनकर? क्या तुमने जाना? मैं सोचता हूँ तुमने वह

शीघ्रता में कह डाला है। ऐसा ही है, न···।" अत्यधिक अस्थिर होकर फिलिप कहता ही चला गया।

तभी क्ल्यूपेट्रा ने कहा—"शान्त होइये, सम्राट्! असन्तोष के भावातिरेक में आप मेरी बात समझ नहीं पाये। स्वस्थ होइये। मैं कहती हूँ······।"

"हाँ, बोलो। मैं स्वस्थ हूँ," कहते हुये ज्यों फिलिप ने प्रयत्न कर अपने भावावेश को शान्त किया। ओलिम्पियास का नाम आते ही जैसे उसमें उद्रेक की भयानक प्रतिक्रिया प्रकट हो जाती थी।

"तब क्या मैं जान सकती हूँ कि आज से अनेक वर्ष पूर्व भी आपकी वही स्थिति थी जो आज है? क्या आपके दाम्पत्य-जीवन का प्रारम्भिक काल इसी विराग-विषाद से प्रारम्भ हुआ था? तब क्या ओलिम्पियास को अपने प्रति उसके स्नेहारोपण का उचित प्रतिदान आपने उसे दिया? क्या नारी की समग्रता की सन्तुष्टि आपसे हुयी? क्या आप सोचते हैं कि नारी केवल वैभव, समृद्धि, ऐश्वर्य, विलास, स्वर्ण, साम्राज्य, सम्राट् ही की इच्छा रखती है? क्या आपने कभी ध्यान किया कि कभी उसी स्थिति में आप मुझे भी अवस्थित कर सकते हैं? क्या आप···।" कहते-कहते क्ल्यूपेट्रा अनायास रुक गयी और एक पल को उसने फिलिप को निहारा।

फिलिप के अश्रु-विगलित नेत्रों को देखकर ज्यों क्ल्यूपेट्रा की वक्तृत्व-शक्ति अनायास विलीन हो गयी। वह दयार्द्र हो उठी। उसके तात्कालिक तर्क तिरोहित हो गये। उसने तुरन्त फिलिप का लौह-हस्त अपने सुकोमल हाथ में ले लिया और ज्यों उसे शान्त करते हुये वह कह गयी—"शान्त-सुस्थिर होइये, सम्राट्! आपके दुःसह दुःख के प्रति मेरी पूर्णतः सहानुभूति है। आपकी इस स्थिति को देखकर मैं आपसे अब अधिक तर्क भी नहीं करूँगी! अब आपका आदेश मुझे शिरोधार्य होगा। आप न्याय-संगत व समीचीन निर्णय स्वयं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है"—कहते हुए

क्ल्यूपेट्रा ने अपने दूसरे हाथ से फिलिप के हाथ को थपथपा दिया और उससे विदा लेने का उपक्रम करने लगी ।

फिलिप व क्ल्यूपेट्रा लुडिया की झील के किनारे बैठे थे । झील का अगम जल शान्त व सुस्थिर था । फिलिप के आँसुओं की भाँति कोहरे की झीनी फुहार वातावरण को शीतलता प्रदान कर रही थी । आँसुओं के प्रवाह एवं क्ल्यूपेट्रा के स्निग्ध कर-स्पर्श से ज्यों फिलिप आस्वस्त हो गया था और तभी वह कह उठा—"तुम्हारे सब तर्कों एवं शंकाओं के उत्तर में मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हें ही नहीं किसी को भी वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान नहीं है । ओलिम्पियास की ये अनीतियें आज से ही नहीं प्रारम्भ से थीं । मेरे इन युद्धों—इन दिग्विजयों ने उसे अवसर व प्रोत्साहन प्रदान किया, क्ल्यूपेट्रा !"

"इसमें ओलिम्पियास का तनिक भी दोष नहीं है, सम्राट् ! मैं एक स्त्री होकर स्त्री का पक्ष नहीं ले रही हूँ । यह तर्क है । यह मनोविज्ञान है । आप समझने की चेष्टा करें महामान्य ! अनैच्छिक स्वर्ग पाकर भी व्यक्ति की निष्ठा अतीत से अधिक भविष्य की ओर जागरूक रहती है । तब वातावरण व परिस्थितियों के विरोध में वह निरन्तर इच्छित के स्वप्नलोक में अमित शक्ति व चेतना प्राप्त कर सन्तोष की सांस लेता है । अनेक प्रसंगों पर वैभव की लालिमा में विषाद् की कालिमा तब उसे श्रेयस्कर प्रतीत होती है । तब अमान्यता की घोषणा में अनेक अवशक्त का आश्रय लेते हैं और ओलिम्पियास की भाँति अनेक मधु-सम्मोहन को आत्मसात् भी कर लेते हैं", क्ल्यूपेट्रा कहती गयी ।

"इसका अनुमान...... ?"

"पुष्टि तो ओलिम्पियास के कृत्य स्वतः ही कर रहे हैं... ।"

"किन्तु यह किसी का स्वभाव, किसी की प्रकृति ही हो, तब ?"

"तब वह पूर्वापरि निर्णय की बात है ।"

"ऐसा अवसर ही न प्राप्त हो सके, तब ?"

"शीघ्रता क्यों करे ?"

फिलिप शान्त होकर अनिमेष क्ल्यूपेट्रा को देखता रह गया।

"मुझसे निश्चिन्त रहें, सम्राट् !" क्ल्यूपेट्रा ने मृदु मुस्कान की रेखा ओठों पर खींचकर कहा।

"क्ल्यूपेट्रा !" विकल होते हुये फिलिप ने कहा।

"हाँ सम्राट्...।"

"क्ल्यूपेट्रा ! तब क्या व्यक्ति में कहीं सुधार की सम्भावना भी नहीं होती ?"

"वह समय व्यतीत हो गया सम्राट् ! उसे आपने अपने हाथों खो दिया।"

"तब उसका सोच ही क्या !"

"हाँ, अब जो नियति का विधान है—हमें उसी पर आश्रित होना होगा।"

फिलिप उठा और अपने अश्व पर पेला के महालय की ओर चल दिया।

२६

◇ ◇ ◇

समूचा मकदूनिया जानता था कि पर्मेनियो सम्राज्ञी ओलिम्पियास का स्नेहपात्र है। फिलिप जानता था कि ओलिम्पियास का रूप-लावण्य, उसके नेत्रों की सराहना, उसके अंतर्मन की जुगुप्सा, उसके शरीर की वश्यता मकदूनिया के एक सेनापति पर आश्रित हो गयी है। अलेक्जेण्डर जानता था कि पिता की माता के प्रति उदासीनता-उपेक्षा ने ही माँ को झकझोर डाला है। उसी प्रतिरोष में सम्राज्ञी की प्रतिहिंसक प्रवृत्ति ने उसे नैतिकता की मान्यताओं-आस्थाओं से डिगा दिया है।

किन्तु उस प्रसंग पर जब फिलिप ने वार्ता उठायी तो ओलिम्पियास ने कड़ककर उत्तर दिया—"विश्वास की चादर लपेटे रहो तो शान्ति पाते रहोगे अन्यथा अविश्वास की केंरोचन में तुम ही नहीं, तुम्हारी यह प्रभुता, यह सत्ता, ये युद्ध, ये दिग्विजय सब उल्कापात की भाँति भूमिसात हो जायेंगे।"

"मैं अपने ही हाथों अपना सर्वस्व ध्वंस कर दूँगा, किन्तु यह सहन नहीं करूँगा कि तुम मेरी ही छत्रछाया में कलुष-कालिमा का ताण्डव-नर्त्तन करो···।"

"वह तुम्हारी दृष्टि की कलुष-कालिमा निश्चित ही तुम्हारा सर्वनाश

कर देगी किन्तु परिस्थिति की मान्यता के स्थान पर यदि तुमने जटिलता का आरोप किया तो वह वर्जना नहीं प्रोत्साहन होगा—प्रोत्साहन ...."

"यह सब प्रलाप है। व्यक्तियों के अस्तित्वों को पीस डालना ही मेरा काम है। मैं यहाँ भी संहार कर डालूँगा।"

"तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम यहाँ किसी को पीसना तो दूर छू भी नहीं सकते। व्यक्ति के भौतिक शरीर को पीस दोगे, पीसो किन्तु उसके अनंतर जो युग-युग तक एक कथा तुम्हारे इतिहास के साथ जुड़ेगी उसको तुम कैसे पीसोगे? कोई कैसे पीसेगा?"

"मैं उस नवजवान को...."

"छू नहीं सकते। व्यर्थ अपने समय व शक्ति का अपव्यय करोगे। अपनी मान-प्रतिष्ठा पर अपने हाथों चोट दोगे। तुम मेरी स्वेच्छाओं को, मैं तुम्हारी अभिलाषाओं को रोक नहीं सकती। कोई पुरुष नारी की, नारी पुरुष की श्रेयता को नष्ट नहीं कर सकता। जहाँ कोई भी अहम्मन्यता की चीत्कार प्रकट करता है वहाँ वह अपने ही अहं का घात करता है। तब प्रत्यक्ष में नहीं तो परोक्ष में व्यक्ति की स्वेच्छाओं की तृप्ति होती है। यदि तुम ऐसा ही चाहते हो तो मैं उसके लिये तत्पर हूँ। मैं इतना समझौता कर लूंगी," कहते हुये ओलिम्पियास की आकृति में तिरस्कार का हास्य प्रकट हो गया।

दिग्विजयी फिलिप को प्रतीत हुआ ज्यों उसका समस्त बल-पौरुष, समस्त बुद्धि-कौशल, समूचा वैभव-यश-कीर्ति एक नारी ने कुचल डाला है, सतत् कुचल रही है। वह अवश है। वह रोक नहीं सकता। कहाँ, किसका, कितना दोष है, उस तर्क-वितर्क का समय व परिस्थिति भी अब शेष नहीं थी और तब वह पराजित-सा, अंतमन की भयंकर विक्रिया-वितृष्णा सहित वहाँ से हट आया। वह सोचता रहा—नारी का यह अपरूप अब भी 'विश्वास की चादर ओढ़ने' की कल्पना करता है। वह सोचता रहा—इस दम्भ में अब भी ओलिम्पियास की यह रूप-गरिमा

उसी प्रकार ग्रीवा उमेठ कर चलना चाहती है। वह सोचता गया—नारी के समक्ष पुरुष की शक्ति का ऐसा ह्रास समाजगत है, स्वभावगत है अथवा प्रकृतिगत—उसे कुछ ज्ञात नहीं। ऐसे में किसी को ज्ञात नहीं हो पाता। वैसी अवशता; किन्तु क्यों ? मर्यादा की समाप्ति के केवलमात्र भय से। अन्यथा वैसी परिस्थिति में किसी प्रकार की सदाशयता, किसी प्रकार की सद्भावना, किसी प्रकार की संवेदना का स्थान कहाँ रिक्त है ? और तब उसने निश्चित सोचा कि ओलिम्पियास एवं पर्मेनियो की समाप्ति के पूर्व उसे न जाने कितना सोचना पड़ेगा—वह सोच रहा है।

"अटेलेस ! मैं क्ल्यूपेट्रा से विवाह करूंगा।"

"सम्राट् !···"

"मैं निश्चय कर चुका हूँ।"

"परन्तु···!"

"तुम मेरी ओर से क्ल्यूपेट्रा को यह संदेश दे देना -"

अपने व्यवहारों से व्यक्ति जब चोट देना चाहता है तब उसकी प्रतिक्रिया से प्रकट प्रत्युत्तर ही उसके अनाचार को झकझोरता है। तभी अनेक स्थलों-प्रसंगों पर सब अहंकार, दम्भ, असद्व्यवहार, अनीति, अवहेलना, अनादर, निर्लज्जता, निरंकुशता, अनियंत्रण एक साथ विलीन होते प्रतीत होते हैं। तब अपने आसन की धरती लोप होती प्रतीत होती है। तभी अपने दोष आरोपण की सृष्टि करते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार फिलिप और क्ल्यूपेट्रा की प्रणय-चर्चा के अनंतर अब परिणय-प्रसंग की स्थिरता को सुनकर ओलिम्पियास ने प्रारम्भ किया था।

ओलिम्पियास ने फिलिप में कितने भयानक मनोद्वेलन का सृजन

किया था, उसने उस पर कितना अत्याचार, कितना अनाचार किया था, उसने उसकी प्रतिष्ठा-मर्यादा कितनी भंग की थी, उसने उसके विश्वास का कितना हनन किया था, उसने अनैतिकता की निर्लज्जता कितनी सीमा तक ग्रहण की थी, उसने समस्त नारी-जाति पर कितना कलंक आरोपित किया था, उसे भुलाकर अब वह फिलिप पर अपनी प्रतिक्रिया का अंकुश कोंचना चाहती थी कि एक स्त्री के रहते क्ल्यूपेट्रा से परिणय की वार्ता ओलिम्पियास के साथ कितना भयानक अत्याचार है।

किन्तु, अब ओलिम्पियास के उस अरण्य-रोदन को किसी ने नहीं सुना। जिससे और जब भी उसने वह प्रसंग प्रस्तुत किया उसी ने नैतिकता की कसौटी पर उसे पीस डाला। इस परिस्थिति में उसका एकमात्र सहाय्य, अब, उसका पुत्र अलेक्जेण्डर ही प्रतीत हो रहा था। माता के प्रति अपने अनन्य प्रेम की आस्था में अलेक्जेण्डर ने सहानुभूति सहित ओलिम्पियास से अनुरोध किया कि वह महान् दार्शनिक और उसके शिक्षक अरिस्ट्राटेल से मिले जिससे उसका चित्त कुछ शान्त होगा।

"व्यक्ति यदि सचमुच यह जानता हो कि अच्छा क्या है तो वह बुरा करे ही नहीं।"

"नहीं सम्राज्ञी ! व्यक्ति समझता है कि अच्छी बात यह है। वह जानता है कि शुभ यह है; तब भी वह उसके विपरीत आचरण करता रहता है। वह बुराई करता रहता है; वह अशुभ कार्यों में रत होता है," विश्व के महान विचारक अरिस्ट्राटेल ने मकदूनिया की सम्राज्ञी ओलिम्पियास के समक्ष अपना तर्क उपस्थित करते हुये कहा—

"किन्तु किसी के हेतु वही बात अच्छी है और किसी के हित में वही बुरी। यह तो जिसके स्वार्थ पर जहाँ ठेस लगती है वहीं बात अच्छी और बुरी का विशेषण प्राप्त कर लेती है।"

"नहीं राजरानी ! ऐसा नहीं है । सदाचार इच्छाशक्ति का एक स्वभाव है । आन्तरिक मनोवृत्ति, कर्म-प्रेरणा अथवा हेतु समुदाय का दृढ़ निश्चित स्वभाव ही सद्गुण कहा जा सकता है।"

"किन्तु सदाचार अथवा सद्गुण है क्या ?" व्यंग्य का विचक्षण हास्य झलकाते हुये ओलिम्पियास ने प्रश्न किया । ज्यों उसके सामने अरिस्ट्राटेल का उतना सम्मान नहीं था जितना अलेक्जेण्डर के समक्ष अथवा तत्कालीन बौद्धिक-जगत् के समक्ष ।

"महाराज्ञी ! जो शुभ हो । जो सर्वप्रिय हो । जो सर्वविजयी हो···"

"हाँ-हाँ, सर्वविजयी तो मकदूनिया का सम्राट् भी है," ओलिम्पियास ने अरिस्ट्राटेल को बीच ही में टोकते हुये कहा—"किन्तु वह सर्वप्रिय तो नहीं है । प्रत्येक के लिये वह शुभ तो नहीं है । कितना तिरस्कार भरा होगा उन लोगों के हृदयों में जिनको विजयोन्माद में पददलित किया गया है।"

"मैंने यह कब कहा है कि फिलिप को उचित-अनुचित का ज्ञान है ही । परिपक्व मस्तिष्क का संतुलन एवं संयमपूर्ण मनोवृत्ति ही सबके लिये शुभ है । किन्तु किसी प्रसंग पर यदि फिलिप अनुचित है तो उसका अर्थ यह कदापि नहीं होगा कि असंयम के लिये तुम्हें निर्बन्ध छोड़ दिया जाय । कृती पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अपने पौरुष का दिग्दर्शन करे किन्तु नारी का यह कर्त्तव्य कदापि नहीं कि वह चारित्रिक अनैतिकता का नग्न प्रदर्शन करे···"

ओलिम्पियास के अहं को ज्यों अरिस्ट्राटेल ने ललकारा और तभी उत्तेजना सहित वह कह गयी—"पुरुष अनैतिकता का नग्न प्रदर्शन कर सकता है ? आपके-से दार्शनिक भी पुरुष ही हैं, न । तभी सब नियम-बन्धन केवल नारी के हेतु हैं।"

"सम्राज्ञी ! उत्तेजित नहीं, शान्त हृदय से विचार कीजिये । जहाँ तक अनैतिकता के बंधन हैं, वे पुरुष-स्त्री के हेतु समान हैं । बुराई स्त्री

करती है तो पुरुष भी करता है। पुरुष करता है तो स्त्री भी करती है। यदि एक पर बंधन होगा तो स्वभावतः दूसरे पर होगा ही···।"

"इन्हीं सिद्धान्तों पर आपने अपने सम्राट् को अनुमति दी है कि वह मेरे समक्ष ही क्ल्यूपेट्रा से विवाह करे···"

"मेरी अनुमति अथवा अस्वीकारिता का प्रश्न ही नहीं है सम्राज्ञी! किन्तु आपने भी फिलिप के समक्ष स्वच्छन्द जीवन व्यतीत किया है, इस पर भी मैं चाहता हूँ कि दोनों ही एक दूसरे के प्रति रोष एवं प्रतिहिंसा की भावना का त्याग करें।"

"अब यह असम्भव है।"

"तब उचित यही था कि आप अपनी आज की इस स्थिति के पूर्व ही मकदूनिया के सम्राट् से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेतीं और तभी स्वेच्छा का आह्वान करतीं", अरिस्ट्राटेल ने दृढ़तापूर्वक कह दिया। उनकी मुद्रा में सौम्यता, शान्ति, निश्छलता विराज रही थी।

ओलिम्पियास मौन-निर्वाक् हो गयी। उसकी आकृति में तीव्र असंतोष एवं कटुता के भाव उमड़ रहे थे। तभी वह अनायास कह उठी—"धन्यवाद, महान् दार्शनिक! संसार आपसे अधिकाधिक लाभ की आशा करता है साथ ही मेरा पुत्र अलेक्जेण्डर भी", कहते हुये ओलिम्पियास स्वर्णासन से उठ खड़ी हुयी।

"किन्तु तुम नहीं", सोचते हुये अरिस्ट्राटेल भी उस नारी के दम्भ को नमस्कार कर लौट आया।

२७

◇ ◇ ◇

क्ल्यूपेट्रा फिलिप के सेनापति अटेलेस की भतीजी थी। अटेलेस को फिलिप ने भली प्रकार धन व मान से संतुष्ट किया था। तभी अटेलेस ने क्ल्यूपेट्रा में फिलिप के प्रति प्रणय अंकुरित किया और क्ल्यूपेट्रा दयार्द्र हो फिलिप से विवाह करने को तत्पर हो गयी। उसे फिलिप एक सरल योद्धा से अधिक नहीं प्रतीत हो रहा था जो संसार में पुरुष-नारी के सम्बन्धों की घोषणा के छल-छद्म से नितांत दूर था। युद्ध-कौशल तथा कूटनीति में भले ही वह पटु हो किन्तु पारिवारिक व्यवहार-कौशल से वह सर्वथा अनभिज्ञ था और तभी ओलिम्पियास के समान परम सुन्दरी को पाकर भी वह उसे खो बैठा और तभी ईर्ष्या और रोष में दोनों दो दिशाओं की ओर लपके। फिलिप ने अन्ततः द्वितीय परिणय का निश्चय किया और ओलिम्पियास फिलिप के प्रकट विरोध पर उतर आयी।

ओलिम्पियास अपनी उद्दण्डताओं, अपने दोषों, अपने अनधिकृत आचरणों के प्रति सोचकर भी नहीं सोचना चाहती थी और फिलिप एक सैनिक के-से रूखे व्यवहार के कारण गृहस्थी के अयोग्य सिद्ध हो रहा था।

अलेक्जेण्डर यह सब जान समझकर भी उदासीन था।

मकदूनिया के दक्षिण एवं ग्रीस के उत्तर में एपीरस का वैभव-सम्पन्न साम्राज्य था। ओलिम्पियास यहीं की राजकुमारी थी। अब से बहुत वर्षों पूर्व जब उसका विवाह फिलिप से हुआ था तब उस विवाह में पात्र की आस्था कम और राजनीतिक महत्व विशेष था।

एपीरस की अनिंद्य रूपवती ओलिम्पियास की कमनीयता, उसका अंग-सौष्ठव, उसका लालित्य, उसका तारुण्य तब यह चाहता था कि कोई उसे दुलरावे, अनेक बार दुलरावे, सदैव दुलराता रहे किन्तु फिलिप-सा राजकाजी व्यक्ति और उस पर उसके दीर्घकालीन युद्धों ने ओलिम्पियास में स्नेह-अनुराग की वह घुटन भर दी कि वह तिलमिला उठी। विद्रोह कर उठी। अपने विवाह के प्रथम वर्ष में ही उसने एक पुत्र-रत्न को जन्म तो दिया परन्तु एलेक्जेण्डर के जन्म के अनन्तर ही उसके उस आन्तरिक द्वन्द्व ने, प्रकट-अप्रकट, स्नेह-अनुराग के नाट्य रचाने प्रारम्भ कर दिये। नारी में जब विरोध-वह्नि का ज्वलन घिर आता है तो वह स्वभावत: अरक्षणीय हो जाती है।

समय की गति के साथ ही ओलिम्पियास की स्वेच्छाचारिता बहुमुखी होकर मकदूनिया के राज-प्रासाद में अठखेलियां करती रही। अनेक अवसरों पर विवाद होने पर फिलिप को ही शान्त होकर मन की कंचोटन को स्वीकार करना पड़ा।

आज ओलिम्पियास अपने शयन-कक्ष में स्वर्ण-पर्यङ्क पर उर्ध्व लेटी हुयी थी। उसके नेत्रों का नीलम रंग, पुतलियों की चंचलता में, तरल रूप-सा, कभी इधर और कभी उधर हिल-डुल रहा था। उसके दाहिने बाहुमूल पर इसका दाहिना कपोल टिका हुआ था जो उस बाहुमूल की धवल-प्रस्तर की-सी चिकनाहट में आकृति के गौरवर्ण का अमृत-पान कर

आकुल श्वासोच्छ्वास की तीव्रता और गरमाहट का अनुभव कर रहा था। इस समय वह विचारों की तन्द्रा में क्ल्यूपेट्रा व फिलिप के मिलन के स्वप्न उतार रही थी। अभी ही उसकी एक सेविका ने बताया था कि फिलिप क्ल्यूपेट्रा के साथ एक संगीत-समारोह से लौटा है।

इस क्षण उसका मन इतना उद्विग्न था कि उसने अभी-अभी पर्मेनियो को भी दासी से यह कहकर लौटवा दिया था कि उसके मस्तक-पीड़ा हो रही है। तब उस स्थिति में, पर्मेनियो के अधिक अनुनय को उसने उतनी ही दृढ़ता से तिरस्कृत कर दिया और पुनर्वार कहलवा दिया कि शयन-कक्ष में फिलिप अवस्थित है। अवहेलना में पर्मेनियो लौट गया क्योंकि वह प्रत्यक्ष देख रहा था कि ओलिम्पियास उस समय मिलना नहीं चाहती। वस्तुतः अभी ही उसने फिलिप को क्ल्यूपेट्रा के साथ देखा था।

और अब ओलिम्पियास का अन्तर्द्वन्द्व तीव्रतर हो रहा था। दूसरे की व्यथा कभी वेदना नहीं प्रतीत होती; जब अपने पर वेदना की टंकार का स्वर गूँजता है, वास्तविक आक्रोश का अनुभव तभी होता है। वैसा ही सा अनुभव ओलिम्पियास को भी हो रहा था। अब स्वेच्छा के स्थान पर प्रतिहिंसा की ज्वाला उसे दहका रही थी।

तभी अनायास सेविका ने सूचना दी—"एपीरस से एक संदेश-वाहक आया है।"

ओलिम्पियास तत्परता में सीधी होकर बैठ गयी। अपने पितृ-गृह से कभी किसी स्थिति में जब किसी समाचार की सूचना मिलती है तो स्त्री सब कुछ भूल जाती है। ओलिम्पियास ने अपने को व्यवस्थित किया। सुरुचिपूर्ण वस्त्र धारण किये। केश व आकृति में प्रसाधन-सामग्री का किंचित प्रयोग किया और अपने भाई के दूत से भेंट करने चल दी।

संदेशवाहक ने एक पत्र दिया, जिसे शीघ्रता में ओलिम्पियास ने

पढ़ा। उसके भाई का नाम भी एलेक्जेण्डर था और उसने ओलिम्पियास को तत्काल एपीरस बुलाया था।

कारण पर अधिक न उलझकर ओलिम्पियास ने एपीरस को प्रस्थान किया।

सर्वाधिक प्रसन्नता फिलिप को तब हुई जब उसने सुना कि पर्मेनियो अपने एशिया माइनर जाने की सूचना देने जब ओलिम्पियास के निकट गया तो उसने उससे बिना भेंट किये द्वार से ही उसे लौटा दिया।

उसी दिन फिलिप ने क्ल्यूपेट्रा से अपने परिणय की तिथि घोषित कर दी।

२८

◇ ◇ ◇

पेला के भव्य राज-प्रासाद में आज क्ल्यूपेट्रा और फिलिप के विवाह का भोज हो रहा था। फिलिप क्ल्यूपेट्रा को पार्श्व में लिये हुये स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान था। माउंट पंगस में स्वर्ण के ढेर पाकर मकदूनिया का राज-प्रासाद सर्वत्र स्वर्ण से आच्छादित हो गया था।

भोज में उपस्थित समुदाय रास-रंग व मदिरा-पान में मत्त हो रहा था। सभी मदिरा-पात्रों को हाथों में लेकर, झूम-झूम कर सम्राट की दीर्घायु एवं सुखद दाम्पत्य-जीवन की कामना कर रहे थे। इन सबका नेतृत्व क्ल्यूपेट्रा का चाचा, अटेलेस कर रहा था।

अटेलेस मदिरा के प्रभाव से अस्त-व्यस्त हो रहा था। वह कभी अनायास यों ही नृत्य करने लगता था तो कभी उच्च स्वर में चीत्कार कर उठता था।

इस समूह से दूर अलेक्जेण्डर एकान्त में बैठा था और उस सब हर्षोन्माद को गम्भीरतापूर्वक देख रहा था। अटेलेस के विशेष आनन्दोल्लास को भी वह समझ रहा था।

तभी यकायक उस भव्य विलास-गृह में स्वर गूँजा—"साथियो! सम्राट फिलिप के उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की कामना करो......

आगे बढ़ो, अपने आराध्य देवता से प्रार्थना करो कि शीघ्र ही मकदूनिया के राजसिंहासन को एक औरस उत्तराधिकारी प्राप्त हो।"

अटेलेस के उस आह्वान पर उस समय वहाँ उपस्थित सभी शासनाधिपति, सामन्त, सेनापति हाथ जोड़कर अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो गये ज्यों परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हों।

तत्क्षण अलेक्जेण्डर आगे बढ़ा। उसने अपने हाथ के मदिरा-पात्र की मदिरा को अटेलेस के मुंह पर उछाल दिया और उसके समक्ष ही उसने थूक दिया। वह अपनी माता पर लगाये उस आरोप का प्रत्युत्तर अटेलेस को खड्ग से देना चाहता था। सर्वत्र सन्नाटा खिंच गया।

अलेक्जेण्डर अटेलेस पर आक्रमण करे, इसके पूर्व ही द्रुतगति से फिलिप अलेक्जेंडर की ओर अपना नग्न खड्ग लेकर लपका। अलेक्जेंडर ने फिलिप के प्रहार को अपने खड्ग पर संभाला और पिता से द्वन्द्व-युद्ध करे इसके पूर्व चपलतापूर्वक वह—"पकड़ो यदि उस व्यक्ति को पकड़ सको जो योरुप से एशिया तक अपनी दिग्विजय की पताका फहरावेगा और एक राज-सिंहासन के अनन्तर दूसरे पर प्रतिष्ठित होगा"—कहते हुए उस आनन्द-गोष्ठी से दूर हो गया।

विवाह-भोज तो उस समय भंग ही हो गया किन्तु उदासी का ऐसा आक्रोश घिर आया कि सभी में एक विलक्षण प्रतिक्रिया प्रविष्ट हो गयी; जो न रोष की थी न हर्ष की। फिलिप विषम विषाद सहित अपने सिंहासन से उठा और क्ल्यूपेट्रा को लेकर विलास-गृह के पार्श्व-द्वार से बाहर हो गया।

इस घटना की सूचना, अतिरंजित होकर सर्वत्र ही प्रसारित हो गयी।

उधर पर्मेनियो को एक विशेष सूत्र से ज्ञात हो गया था कि वस्तुतः

वह एक दुरभिसन्धि ही थी जिसके द्वारा ओलिम्पियास को इस अवसर की प्रतीक्षा में एपीरस भेज दिया गया। पिता की मृत्यु के अनन्तर राज-सिंहासन के हेतु एपीरस के अलेक्जेण्डर व उसके चाचा में संघर्ष चल रहा था जिसको फिलिप ने समाप्त कर अलेक्जेण्डर को—ओलिम्पियास के भाई को—एपीरस में सत्तारूढ़ किया था। उस उपकृत भाई ने ही फिलिप की विशेष योजना के अनुसार बहन को बुलावा भेज दिया।

अस्तु, पर्मेनियो ने द्रुतगति से जाकर ओलिम्पियास को एपीरस के मार्ग में ही सूचना दी और उसे लेकर पेला की ओर लौट पड़ा।

अब मकदूनिया का राज-प्रासाद अलेक्जेण्डर के लिये अनुपयुक्त था। वह एक पल भी पेला में नहीं रुका और शीघ्रता में अपनी मां से मिलने एपीरस की ओर चल दिया।

अलेक्जेंडर ने मकदूनिया की सीमायें पार ही की होंगी कि ओलिम्पियास को उसने लौटकर आते हुये देखा। पर्मेनियो तो अलेक्जेंडर को वहाँ देखकर हर्षित हुआ किन्तु अलेक्जेंडर वहाँ भी ओलिम्पियास के साथ पर्मेनियो को देखकर क्रोधावेश में लाल हो गया।

तत्क्षण पर्मेनियो अभ्यर्थना में अपने अश्व से उतरे कि इसके पूर्व ही तत्परता में अलेक्जेंडर ने अपने खड्ग का एक पूर्ण प्रहार पर्मेनियो पर किया और उसके दो टुकड़े कर दिये।

तदनन्तर वह अपनी मां की ओर उन्मुख हुआ और उसने पेला की समस्त घटनायें कह सुनायीं।

अलेक्जेंडर व ओलिम्पियास दोनों ही एपीरस की ओर चल दिये।

इन दिनों अलेक्जेंडर व ओलिम्पियास एपीरस में लिसेस्टिस की

पहाड़ियों में प्रवास कर रहे थे। ओलिम्पियास अपनी अतीत की स्मृतियों में विस्मृत थी और अलेक्जेंडर अपने भविष्य को कल्पना-लोक में उतारता चला जा रहा था।

इस गृह-विग्रह में जो पूर्व अभियान की योजना नष्ट-भ्रष्ट हुयी थी, उसका ध्यान कर अलेक्जेंडर अत्यधिक त्रस्त था। वह सोच रहा था—वह कहाँ इन झंझटों में फँस गया। वह इस सबके लिये नहीं बनाया गया। भविष्य उसे ललकार रहा है। वह यों किस प्रकार लिसेस्टिस की निर्जनता में जीवन का नाश कर रहा है। वह अपनी स्वतन्त्र सैन्य-शक्ति के गठन तक की योजनायें बना चुका था।

तभी उसे फिलिप का निर्देशपूर्ण निमन्त्रण प्राप्त हुआ और वह ओलिम्पियास के साथ पुनः मकदूनिया लौट आया।

पेला के राज-प्रासाद में अलेक्जेण्डर तो पूर्ववत् एशिया माइनर पर सैनिक-अभियान की व्यस्तता में तत्पर हो गया किन्तु ओलिम्पियास का मर्माहत मन उसे रह-रहकर कचोट रहा था। वह प्रतिहिंसा की योजनाओं में निरन्तर लीन थी।

"अब सन्तुष्ट हुआ। अब तो तेरी सब महत्त्वाकांक्षायें पूर्ण हो गयीं। अपनी मूर्खता व अदूरदर्शिता में अपने साथ मेरा भी सर्वनाश कर अब तो अपने खड्ग से मेरी गर्दन उतार दे। सुनना चाहता है तो सुन; अब मैं तुझे अटेलेस का दोष बताती हूँ। नहीं, नहीं बताऊँगी। किन्तु, हाँ—सुन, बताती हूँ। मुझसे तिरस्कृत अटेलेस ने प्रतिहिंसा में ही क्ल्यूपेट्रा का यह प्रणय-अभिनय पूरा उतार दिया। पगले! ये राज्य-संघर्ष हैं। ये नैतिकता से नहीं, बल से दबते हैं···"

"किन्तु माँ तुम्हारा प्रायश्चित्त···"

"इससे भयानक और क्या होगा कि अपने ही समक्ष अपने पुत्र के युवराज्याधिकार, सत्ताधिकार विलीन होते देख रही हूँ।" ओलिम्पियास ने आंसुओं से अपना आँचल भिगोते हुए व्यक्त किया।

"किन्तु मां! मकदूनिया की सत्ता ओलिम्पियास के पुत्र की होगी अथवा क्ल्यूपेट्रा के पुत्र की—इसका निर्णय तो मेरा यह खड्ग ही करेगा।"

"मैंने तुझे देख-समझ लिया। मुझे तेरी आवश्यकता नहीं। अपने अपमान का प्रतिकार मैं स्वयं लूंगी। तू और कुछ न कर—केवल देख।" कहकर ओलिम्पियास ने अपनी दन्त-पंक्ति भींच ली। ओलिम्पियास कुछ ऐसी प्रियदर्शिनी थी कि उसकी सरोष आकृति में कड़वाहट के स्थान पर मृदु सम्मोहन ही प्रखर हो उठता था। आयु की इतनी सीढ़ियां चढ़ आने पर भी ऐसा लगता था कि उसके जीवन का प्रभात अभी अपनी तरुणाई की ओर ही झांक रहा था!

किन्तु इधर क्ल्यूपेट्रा के पुत्र उत्पन्न होने के अनन्तर वह अत्यधिक खिन्न हो रही थी तथा आत्मग्लानि का आक्रोश, अब उसकी आकृति में मूर्तिमान हो आया था। इधर अल्पकाल में ही उसमें वृद्धता के चिह्न प्रकट हो गये थे। उसके उन अरुण कपोलों पर सलवटों के रूप में काल की रेखायें खिच आयी थीं। अतीत की उद्दण्डताओं ने उसके नेत्रों के चतुर्दिक कलुष कुण्डल खींच दिए थे। किन्तु इसी वृद्धता में उसमें प्रतिकार की भावनायें अपनी चरम सीमायें छू रही थीं।

मकदूनिया का उत्तराधिकार अवैधता का आह्वान कर रहा है। उसकी चिन्ता अलेक्जेण्डर को इतनी नहीं थी जितनी फिलिप को। अलेक्जेन्डर में अपने भविष्य के हेतु कुछ ऐसा आत्म-विश्वास था कि वह उस प्रकार की छोटी-मोटी घटनाओं को उपेक्षणीय ही मानता था।

एपीरस के शासक अलेक्जेन्डर से अपने सम्बन्ध अधिक दृढ़ करने के मन्तव्य सहित फिलिप ने अपनी पुत्री का परिणय-सम्बन्ध उससे स्थिर कर दिया । अब फिलिप ने भी ओलिम्पियास से प्रतिकार लेने की भावना में शान्त विद्रोह प्रारम्भ कर दिया था। वह सब ओर से ओलिम्पियास को स्थान-च्युत करना चाहता था ।

उधर ओलिम्पियास भी दृढ़तर हो रही थी ।

२६

○ ○ ○

पेला के न्यायालय में एक अति गम्भीर परिवाद चल रहा था। उसका अभियोक्ता था एक सैनिक पासेनियस जिसने सेनापति अटेलेस के विरुद्ध अनैतिक व्यवहारों के गम्भीर आरोप लगाये थे। उसने अपने परिवाद द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि अभियुक्त ने न केवल उसकी मर्यादा की हानि की है अपितु वह निरन्तर उस प्रकार के कलुष-मय कृत्यों में लीन है और समाज का एक अभिशाप बना हुआ है।

परिवाद की कथा—कथा इस प्रकार थी कि पासेनियस ने अटेलेस के वाक्‌जाल में फंस कर अपनी कौमार्या पुत्री का परिणय-सम्बन्ध अटेलेस से निश्चित कर दिया। किन्तु अचानक ही उसकी पुत्री लोप कर दी गयी जिसका कोई पता नहीं था।······यह भी अभियोक्ता को बाद में ही पता चला था कि न अटेलेस अविवाहित ही था न उसने अपनी पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद ही किया था ···अभियुक्त के इस प्रकार के अनाचारों और अनैतिक कुकृत्यों के अन्य प्रमाण भी समाज में विद्यमान थे जो मर्यादा की सीमाओं में जकड़ कर प्रकाश में नहीं आना चाहते थे··· इत्यादि।

इसके अतिरिक्त भी पासेनियस ने सम्राट से मार्मिक विनय की

थी कि अभियुक्त को कठोर से कठोर दंड दिया जावे।

फिलिप एकान्त मिलन-कक्ष में बैठा था। समक्ष ही पासेनियस विनय-भाव सहित खड़ा हुआ था।

फिलिप : पासेनियस ! मैं तुम्हें कृतकृत्य कर दूँगा। तुम अपने इस परिवाद को लौटा लो।

पासेनियस : यह असम्भव है सम्राट् !

फिलिप : देखो ! उन्नति के अवसर जीवन में सदा नहीं आते हैं, सैनिक !

पासेनियस : अपनी पुत्री के वक्ष पर पग-प्रहार कर मैं उन्नति नहीं चाहता, सम्राट् !

फिलिप : तुम कैसे कह सकते हो कि अपराध अटेलेस का ही है और तुम्हारी पुत्री सर्वथा निर्दोष है।

पासेनियस : उसकी अबोधता ही उसके निर्दोष की साक्षी थी, सम्राट् ! काश, वह आपकी पुत्री होती।

फिलिप : फिर भी वह तरुणी थी।

पासेनियस : उसी स्वरूप में वह आपकी पुत्री होती। (उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी)

फिलिप : चुप हो जाओ'''तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार है अथवा नहीं।

पासेनियस : कभी नहीं, कदापि नहीं। मुझे प्रलोभन मत दीजिये न्यायपति ! मुझे न्याय चाहिये न्याय—अभियुक्त को कठोर दण्ड।

फिलिप : ठीक है, जाओ।

"मूर्ख ? वह सम्राट् का श्वसुर है। न्याय की भीख मांगने गया था। मिल गयी···"

"महाराज्ञी ! आप मेरी सहायता कीजिये।"

"तुझे न्याय नहीं मिल सकता मूर्ख ! तुझे कुछ और करना होगा···"

अपनी उस दरिद्र-असहाय कुटी में मकदूनिया की सम्राज्ञी ओलिम्पियास को देखकर जैसे पासेनियस स्तम्भित रह गया। लड़खड़ाते कुछ शब्द प्रकट हुये। और वह निर्वाक् सम्राज्ञी को अनिमेष देखता ही रहा।

"मुझे अपनी पुत्री के लिये क्या करना होगा, सम्राज्ञी !"

"करोगे ?"

"हाँ करूँगा।"

"वचन दो।"

"वचन देता हूँ।"

"करोगे ?"

"हाँ।"

"करोगे ?"

"हाँ।"

'करोगे ?"

"हाँ, हां, हां।"

"तब समय आने पर मेरे निर्देश पर तुरन्त मेरे पास चले आना।

पासेनियस विनत ग्रीवा सहित खड़ा का खड़ा रह गया और ओलिम्पियास विद्युत की भाँति वहाँ से चली गयी।

समूचे मकदूनिया में चर्चा थी कि पासेनियस कभी न्याय नहीं पा सकता। सभी का मत था कि उसमें सम्राट का एक अभिन्न अंग सन्निद्ध है। और वही हुआ भी। अटेलेस को फिलिप ने निर्दोष घोषित किया

और पासेनियस की पुत्री की गतिविधि को संदिग्ध व्यक्त किया।

पासेनियस तड़पकर रह गया। वह निरीहता में मकदूनिया छोड़कर जाने की सोच बैठा और उसने सेना से भी अपने को पृथक् कर लिया।

"पासेनियस! यह है तुम्हारा पारितोषिक। जाओ।"

"महाराज्ञी! मुझे यह नहीं चाहिए। आप विश्वास कीजिये मैं अपना प्रतिकार लेकर रहूँगा। मैं वैसा ही करूँगा जैसा आपका निर्देश है।"

आज मकदूनिया के यशस्वी शासक फिलिप की राजकुमारी का विवाह एपीरस के शासक अलेक्जेण्डर से सम्पन्न हो रहा था। मकदूनिया ही नहीं आज समूचा ग्रीस एक प्रकार से पेला में विराज रहा था। एथेन्स, थेबीज, कोर्ठीन्थ, ऐंसीन्स, फोसियम, स्पार्टा, थिसेली, मेगलोपोलिस, पायोनेस, एम्फिसा, एवं अनेक स्थानों के शासक, शासनाधिकारी, सैन्याधिकारी, विशिष्ट नागरिक फिलिप की पुत्री के विवाह में सम्मिलित होने पेला आये हुये थे।

एपीरस के शासक के सम्मान में भी सभी ने भेंट-उपहार प्रस्तुत किये। सर्वत्र हर्षोल्लास से वातावरण मुखरित हो रहा था।

मध्याह्न में फिलिप ने, एपीरस के सम्राट अलेक्जेण्डर तथा पुत्र अलेक्जेण्डर सहित शाही जुलूस में नगर-यात्रा कर पेला-राज-प्रासाद के भव्य प्रांगण में प्रवेश किया। आगे-आगे रक्षा-पंक्तियाँ चल रही थीं, उसके पीछे आगन्तुक, अन्य अतिथि व शासक, इसके पश्चात् अलेक्जेण्डर अकेला आगे बढ़ रहा था। अलेकजेण्डर के तुरन्त पीछे ही एपीरस के शासक को अंग-रक्षक घेरकर चल रहे थे।

संगीत-ध्वनियों से वातावरण लहरा रहा था। दर्शकों की अपार भीड़ ने पेला के राज-प्रासाद को सब ओर से घेर लिया था। सभी ओर आनन्द एवं हर्ष का साम्राज्य था।

एपीरस के शासक अलेक्जेण्डर के अंगरक्षकों की पंक्ति समाप्त होते ही बीच में कुछ स्थान रिक्त था और उसके पश्चात् फिलिप के अंगरक्षक चल रहे थे। इनके पश्चात् फिलिप और तदनन्तर सैनिकों की एक गहन रक्षा-पंक्ति चल रही थी।

शनैः-शनैः सभी ने सभा-भवन में प्रवेश किया। उस सभा-भवन में मकदूनिया के शासक का वैभव पुकार-पुकार कर कह रहा था कि यह एक शक्तिशाली शासक का शासन-मंडप है। वहाँ दीवारों व छतों पर ग्रीस के कलाकारों द्वारा कलात्मक प्रतिमायें, पच्चीकारी का काम और स्वर्ण के तार खचित थे। अनेक युद्धों के दृश्य दीवारों पर अंकित थे। प्रस्तर-स्तम्भों पर अनेक प्रकार के प्राचीनतम अस्त्र-शस्त्र लटक रहे थे जो मकदूनिया के प्राचीन शासकों की तथा विजित देशों से छीने हुये शस्त्रों की स्मृति दिला रहे थे।

उस विशाल सभा-भवन के अनेक द्वारों पर मकदूनिया के दिव्य प्रहरी सतर्क भाव से पहरा देते हुये भी मुदित-मन से सभा की उपस्थिति की ओर झांक रहे थे।

अल्पकाल में ही सभी अतिथियों एवं विशिष्ट जनों ने अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिये। इसी समय अपने अंग-रक्षकों सहित फिलिप मंच की ओर बढ़ा। एक निमिष में समय का जितना अल्पतम भाग बीतता है, उतना ही समय बीता होगा कि फिलिप के पार्श्व के दोनों ओर के अंग-रक्षक पीछे रह गये और फिलिप आगे बढ़ गया; तभी विद्युत से भी अधिक चपलता से पासेनियस सामने आया और उसने पल भर में अपनी कटार से फिलिप को वहीं समाप्त कर दिया।

सर्वत्र कोहराम मच गया।

उत्तरापथ

३०

○ ○ ○

फिलिप की मृत्यु के अनन्तर अलेक्जेन्डर निर्विवाद रूप से मकदूनिया पर सत्तारूढ़ हो गया। सभी ने उसका स्वागत किया। सर्वाधिक प्रसन्नता मकदूनिया के वासियों को हुयी।

शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर अल्पकाल में ही अलेक्जेन्डर ने ग्रीस को एक सूत्र में बाँध दिया और वहाँ का एकछत्र शासक होकर जो उसने दृष्टि उठायी तो वह पूर्व पर ही टिक गयी। ईरान और तब उत्तरापथ उसका निर्दिष्ट लक्ष्य था।

अतिशीघ्र ही अलेक्जेन्डर ने ईराम पर सैनिक-अभियान प्रारम्भ कर दिया।

अलेक्जेन्डर तीस हजार पदाति एवं पाँच हजार अश्व-सैनिकों की शक्ति लेकर पूर्व दिशा की ओर चल दिया। उसके साथ मकदूनिया एवं ग्रीस की चुनी हुयी सेना थी, जिसका संचालन रण-कुशल सैन्याधिकारी कर रहे थे। अलेक्जेन्डर के पास प्लूटार्क, पीथन, नियार्क, क्रेटर, मिनेन्डर, एन्टीगोनिस, निकानार (पर्मेनियो का पुत्र) सदृश युद्ध-विद्या-विशारद सेना-नायकों की सबल शक्ति थी।

यह विजयवाहिनी जिधर जाती उधर ही विनाश और विध्वंस का

नग्न प्रदर्शन होता। देश के देश उजड़ जाते। खेती-बाड़ी नष्ट होती। नर-संहार का तांडव नर्तन देखकर हृदय दहल उठता। विजयोन्माद में मकदूनिया व ग्रीस के सबल योद्धा लूट-खसोट करते।

अपने इस सैनिक-अभियान में अलेक्जेन्डर ने एक के पश्चात् दूसरा देश विजित किया। रणभेरी बजी। युद्धस्थली रक्त-रंजित हो उठी। अलेक्जेन्डर की विजयवाहिनी शासकों का मद-भंजन करती हुयी आगे बढ़ती गयी और पार्श्ववर्ती साम्राज्य अपने को व्यवस्थित भी न कर पाये कि अलेक्जेन्डर ने समूचे एशिया माइनर पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

एशिया माइनर को जीतकर अलेक्जेन्डर की सेना के उत्साह द्विगुणित हो गये। ग्रीस के योद्धाओं की युगों-युगों की साधना पूर्ण हो गयी। मकदूनिया एवं ग्रीस के उन प्राचीन शासकों के स्वप्न पूरे हो गये, जिन्होंने कल्पना के दीप सँजोकर विजयाकांक्षाओं की आरती उतारी थी किन्तु समय के अन्धड़ ने उनके वे स्वप्न-दीप बुझा दिये थे और वे विचार एवं योजनाओं को तब कार्यान्वित न कर पाये थे।

अलेक्जेन्डर की विजयवाहिनी आगे बढ़ती जा रही थी। पदाति-सेना के सैनिक जयध्वनियाँ करते, हर्षोन्माद में भूमि से न जाने कितना उछल जाते। अपने तीखे भाले आकाश की ओर उछालते और पंक्तियों में आगे बढ़ते जाते थे। ये मकदूनिया एवं ग्रीस की गौरव-गाथाओं के गीत गाते जाते थे। अश्वसेना के योद्धा अपने-अपने अश्वों पर झूमते, किलकारियाँ भरते और विनोद-वार्ता करते जाते थे। प्रसन्नता में जब इनके अश्व हिनहिनाते तो इन लौह-योद्धाओं के सबल हाथ उनकी गर्दन थपथपा देते थे।

इनमें भी भूत-भविष्य-वर्तमान; देश-विदेश; अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग; गृह

सम्बन्धी; राज्य-सम्बन्धी, नीति-सम्बन्धी, नियम-सम्बन्धी; अनैतिकता व अनाचार को लेकर; आस्तिकता-नास्तिकता और भगवान तक की बातें होती थीं। ये राजनीति-कूटनीति पर तर्क करते थे। अपने मत निर्धारित करते थे। ये सोचते थे कि राजा तो नाम का होता है, शासन के मूल उपकरण तो हम ही हैं। ये दर्शन व आध्यात्म का मनन करते और इतिहास का गूढ़ चिन्तन भी।

इन्हीं में एक दल में तर्क छिड़ गया— युद्ध और शान्ति पर'—

एक सैनिक ने कहा—"युद्ध होने पर ही शान्ति की कामना की जाती है।"

दूसरा बोला—"किन्तु शान्ति में युद्ध की कामना कोई नहीं करता।"

"कोई क्यों नहीं करता। कोई तो करता है तभी तो युद्ध होता है; अन्यथा क्यों हो।"

किन्तु युद्ध में शान्ति की कामना सब करते हैं। शान्ति में युद्ध की कामना कोई ही करता है।" तीसरा सैनिक बोल पड़ा।

"मैं कहता हूँ क्यों न करे उसे करना चाहिये।"

"क्यों ?"

"इसी कारण कि जैसे जीवन के अनेक क्रिया-कलाप हैं, काम-धन्धे हैं, व्यापार-वाणिज्य हैं—ऐसे ही युद्ध भी एक व्यापार है। युद्ध भी जीवन की एक व्यस्तता है। एक-दो नहीं हजारों-लाखों व्यक्ति इसमें कार्य-रत रहते हैं। एक-दो नहीं लाखों-करोड़ों, अरबों की धनराशि चल से अचल और अचल से चल बन जाती है।"

"किंतु ऐसी व्यस्तता किस लाभ की कि जिसमें लाखों-करोड़ों-अरबों का नाश हो। हजारों-लाखों निरीह प्राणियों की हत्यायें हों। बच्चे बिलबिलायें। स्त्रियों का सतीत्व अपहरण हो। अनैतिकता का प्रचार हो। यही नहीं, मानव मानसिक तत्वों का ह्रास हो। झूठ, दम्भ, चोरी, कटुता,

कर्कशता, कलह, विग्रह, विषाद, शोक, ग्लानि, ईर्ष्या, द्वेष का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित हो जाये। नर नर का भक्षी बन जाये।"

"और तब हम उसके बिना खायें कहाँ से ? तुम क्या सोचते हो; तुम्हारा पालन कैसे हो ?"

"सृजन से नहीं संहार से हमारा पालन होगा, क्यों ? क्यों, क्या युद्ध के अतिरिक्त मनुष्य के पास कोई धन्धा ही नहीं है ? हम सृजनात्मक कार्य कर ही नहीं सकते ? क्यों, क्या खेती-बाड़ी करने में हमारी कलाइयां निर्बल हो जावेंगी ? क्या हमारे ये बलिष्ठ भुजदण्ड भूमि से स्वर्ण नहीं निकाल सकते कि हमें उसके लिये लोगों की हत्यायें करनी ही पड़ें। अपना देश छोड़ विदेश जाना पड़े। और हम ही हत्या क्यों करें ? क्या हमारी हत्या का पल-पल भय नहीं बना रहता है ? हम यहाँ काट डाले जावें और हमारे स्वजन-परिजन हमें देख भी न सकें। दो अश्रु भी न गिरा सकें।"

"मानवी नहीं कुछ दानवी प्रवृत्तियाँ होती हैं। मनुष्य रूप में कुछ राक्षस होते हैं। रक्षक रूप में कुछ भक्षक होते हैं—उनकी प्रताड़ना के हेतु ही युद्ध आवश्यक है।"

"जिसको आत्मबल नहीं शान्त कर सकता उसे शस्त्रबल क्या शांत करेगा ? शान्ति और सदाशयता से हम देशों पर नहीं, सृष्टि पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। और फिर शस्त्र-बल से प्राप्त विजय की स्थिरता क्या, अस्तित्व क्या ? आज हम सबल हैं। एशिया माइनर को कुचलकर आगे बढ़ रहे हैं। कल कोई सबल था, वह इसी एशिया माइनर से आगे बढ़कर हम तक जा पहुँचा था और धन-जन की क्षति ही नहीं देवालओं तक को नष्ट-भ्रष्ट कर आया था। वह युद्ध ही तो था जिसने ग्रीस के मन्दिरों को ध्वस्त किया था। उन्हें जलवा दिया था और तब आने वाला कल किसी अन्य को फिर, हमारे द्वार तक भेज सकता है जो हमारी ही भाँति लूट-खसोट करे, हत्यायें करे, हमारी स्त्रियों की लाज नष्ट करे।

ग्रौर तब इसका कोई ग्रन्त ही न हो···"

"तब तुमने संसार के युद्ध-जीवियों के संतोष का क्या उपाय सोचा है ? भिक्षा-वृत्ति ?"

"नहीं शान्ति···।"

"बिना युद्ध के शान्ति की रक्षा भी नहीं हो सकती। शान्ति की ग्रशान्ति ही युद्ध का बीजारोपण करती है।"

"शान्ति की ग्रशान्ति भी शान्ति से ही शांत हो सकती है। शांति तो मनस्तत्व है, उसमें शरीर-बल का क्या काम ?"

"तब ग्रच्छा हो कि हम लोग ग्रलेक्जेण्डर से कह दें कि हम घर जाते हैं।" चौथे सैनिक ने बीच ही में खिलखिला कर हँसते हुए कह दिया।

"ग्रौर क्या ? यह फिलिप का लड़का है। लड़ते-लड़ते हमें पीस डालेगा। न जाने कहाँ तक ले जावेगा। ग्रभी तो सवेरा है। चलो लौट चलें।" पांचवें सैनिक ने व्यक्त किया।

तभी ग्रनायास स्वर गूंजा—"सावधान !"

सभी सैनिक सतर्क होकर सावधान हो गये ग्रौर निकट से ग्रलेक्जेन्डर ग्रपने ग्रंग-रक्षकों सहित ग्रागे निकल गया। ग्रनायास ही सभी सैनिकों की गर्दनें विनय में झुक गयीं तथा सैन्य-पंक्तियां ग्रागे बढ़ती गयीं। तर्क-वितर्क हुग्रा ग्रौर पीछे छूट गया। यही जीवन का क्रम है। मनुष्य ग्रपनी स्थिति से ग्रागे बढ़ना चाहता है या पीछे हटना चाहता है किन्तु वह कुछ नहीं कर पाता है ग्रौर वहीं चलता जाता है जहाँ वह चलता रहता है।

"निकानार ! ईरान की सीमायें निकट ग्रा रही हैं। तुम देशों पर विजय प्राप्त करने चल रहे हो तब इस उदासी का कारण ? क्रेटर

ने चलते-चलते अपनी सैन्य टुकड़ी को पीछे छोड़कर अश्व निकानार के निकट लाते हुए प्रश्न किया ?

"उसका कारण अलेक्जेन्डर जानता है। उसका कारण तुम जानते हो। उसका कारण······"

"तुम्हारा मृत पिता पर्मेनियो जानता था। क्यों, न ?"

"क्रेटर !"

"यही कि किसी देश की सम्राज्ञी जगत-माता होती है। सबकी रक्षिका, सबकी शासिका, सबकी मां, हमारी मां, तुम्हारी मां···।"

"क्रेटर ! तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"यही कि पर्मेनियो ने जिस अनैतिकता, जिस अनियमन, जिस कलुष का बीजारोपण मकदूनिया में किया था उसका उसे दण्ड मिला। मुझे क्षमा करना। वह भले ही तुम्हारा पिता था, तो क्या हुआ ?"

"उस सब पाप के मूल में ओलिम्पियास थी मकदूनिया के सेनापति ! जो सम्राट् की, अपने पति की, हत्या की संयोजना कर सकती थी, उससे क्या कुछ सम्भव नहीं था महानुभाव ?"

"उसका दण्ड उसे भी मिलेगा और मिल ही रहा है, निकानार ! किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम बुराई देखें और सम्भालें नहीं, अथवा उस सम्भाल में अपने को असमर्थ पाकर, तब अच्छा हो हम दूर ही हट जायें; या स्वयं भी वैसे ही बन जायें ? बुराई को हम ग्रहण कर लें ? बुराई को प्रोत्साहन दे डालें ?"

"कहीं कोई घिर जाता है तो सभी इस प्रकार की टीका-टिप्पणी करते हैं, क्रेटर ! तुम्हीं क्या नवीन बात कह रहे हो ?"

"कोई घिरे क्यों ? पशु और मनुष्य में बुद्धि-बल का अन्तर है या नहीं, मेरे भाई ! यह कहो कि अपना कलुष दूसरे के कलुष में सम्मिलित हो गया और तब अनीति ग्राह्य हो गयी। पर्मेनियो, तुम्हारा पिता तो

बड़ा धर्मात्मा था, निकानार ?"

"ओलिम्पियास ने उनका धर्म-कर्म सभी नष्ट किया क्रेटर ! नहीं तो तुम जानते हो कि वह कभी स्वर्गीय सम्राट् का कितना कृपा-पात्र रहा था ?"

"चाहे जैसा महान् प्रलोभन समक्ष हो निकानार ! संयम अपने से होता है। भगवान ने हमें बुद्धि और तर्क का अस्त्र दिया है। शुभाशुभ समझने की शक्ति दी है किन्तु हम उसका उपयोग भी तो करें।"

"हाँ, ओलिम्पियास को क्या हुआ क्रेटर !"

"उसको गलित-कुष्ठ हो गया है, निकानार ! क्या तुमने उसे इधर नहीं देखा ?"

"भगवान् न करे मैं उसको कभी देखूं। अधम नारी !"

"तुम्हारी प्रतिक्रिया उचित ही है, निकानार !"

तत्काल ही एक अश्वारोही वेग से आगे बढ़ आया और निकानार को सम्बोधित कर बोला—"सम्राट् का बुलावा है।"

"निकानार कुछ विचलित हुआ किन्तु तुरन्त ही संदेशवाहक-सैनिक के साथ अलेक्जेन्डर की ओर बढ़ गया।

"निकानार ! वह सामने 'बायीं' ओर की पहाड़ी पर चढ़कर देखो कि उस ओर क्या है ? मेरा अनुमान है कि इन पहाड़ियों के बाद ही हमें डेरियस की सेना मिलेगी। मैं इधर दाहिनी ओर से जाता हूँ··· पीथन और नियार्क मिनेन्डर और प्लूटार्क के साथ बाद में सामने से आवेंगे। देखो, ध्यान रखना। नीचे मत उतर जाना। उस पार का दृश्य देखकर दाहिनी ओर पर्वत पर ही बढ़ आना जिससे मुझ से भेंट

कर सको ।······क्रेटर किस ओर है ? वे सब मानचित्र उससे लाओ ।"

अलेक्जेन्डर ने युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व की रूपरेखा का सेनापति निकानार को निर्देश किया और तब उसने अपने अश्व बुकीफलस को एक एड दी । बुकीफलस पीछे के दोनों पैरों पर, आगे के पैर उठाकर खड़ा हो गया ! प्रतीत हुआ ज्यों बुकीफलस अत्यधिक प्रसन्न हो रहा हो । तभी अलेक्जेन्डर ने उसकी गर्दन के बालों को सहलाया, उसे थपथपाया और वह तब अलेक्जेन्डर की भांति एक दृष्टि में ही ग्रीस की उस विशाल सेना को पीछे तक देख गया जो पंक्ति-बद्ध दूर तक खड़ी थी और उसका दूसरा छोर दिखाई नहीं दे रहा था ।

३१

◇ ◇ ◇

शीत ऋतु की तीक्ष्ण वायु शरीर की गलन सहित पर्वतों व मैदानों में घुमेड़ें ले रही थी। कुहासे में डूबे आकाश से बरफ की झीनी फुहार पड़ रही थी। उन योद्धाओं के तन जहाँ एक ओर शीत से प्रकम्पित हो रहे थे वहाँ दूसरी ओर ईरान की विजय की कल्पना में उनमें तीव्रता, साहस तथा उत्साह की गरमी भरती जा रही थी।

अलेक्जेन्डर का बुकीफलस अलेक्जेन्डर को अपनी पीठ पर चढ़ाये हुये स्फूर्ति से गर्दन उमेठ कर पर्वत की ऊँच-नीची कगारों पर चढ़-उतर रहा था तभी बायीं ओर से निकानार की सैन्य-टुकड़ी उधर बढ़ती प्रतीत हुयी। अलेक्जेन्डर ने सोचा कि डेरियस की छावनी यहीं-कहीं निकटवर्ती प्रदेश में ही होगी।

एक स्थान पर अलेक्जेन्डर निकानार से मिला और उसने बताया कि डेढ़ या दो मील दूर सेनाओं के खेमे मैदानों में लगे हुये हैं।

तत्काल ही अलेक्जेण्डर ने निर्देश किया—"तुम पूरी सेना को लेकर दाहिनी ओर से पर्वत का चक्कर काटकर आओ। तब तक मैं इस पर्वत पर से तुम्हें देखूँगा और तुम्हारे मैदान में पहुँचते ही मैं इस

मार्ग से मैदान में उतर आऊँगा ।"

निकानार चला गया ।

पर्वत के उच्चस्थ भाग से अलेक्जेन्डर के कुछ सैनिक तंबूरे बजा रहे थे तथा अनेक युद्ध-वाद्यों के उच्च घोष कर रहे थे जिससे योद्धाओं का उत्साह द्विगुणित हो रहा था ।

अलेक्जेन्डर व डेरियस का युद्ध चल रहा था । दोनों ओर की प्रबल सेनायें चीत्कार सहित लोहे को लोहे से काट रही थीं । अनेक दिशाओं से अलेक्जेन्डर के कुशल सेनानी धीरे-धीरे शत्रु-सेना में पैठकर उसे खदेड़ रहे थे ।

डेरियस स्वयं युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित था तथा अपने योद्धाओं में उत्साह भर रहा था । उसने अलेक्जेन्डर के विरोध में एक महती सैन्यशक्ति संचित करके युद्ध में झोंक दी ।

ईरान और यूनान का पुराना वैर था । ईरान यूनान का प्राचीन शत्रु था । वह शत्रुता की प्रतिहिंसा ही थी जिसने ग्रीस व मकदूनिया की सैन्यशक्ति को अनेक बार ईरान की ओर उन्मुख किया था ।

इस समय डेरियस के पास अलेक्जेन्डर से चतुर्गुणित सैन्य-शक्ति एकत्र थी जो युद्ध में प्राणों का मोह त्याग कर नर-संहार करने पर तत्पर थी किन्तु अलेक्जेन्डर के युद्ध-कौशल पर विजय प्राप्त करना और उसे स्थान से च्युत कर देना दुष्कर कार्य था । डेरियस अदम्य उत्साह से लड़ता रहा ।

जिस प्रकार अलेक्जेन्डर की सेना में अनेक स्थानों के तथा अनेक प्रकार के सैनिक थे—ज्यों मकदूनिया के पर्वतीय योद्धा, ग्रीस के छितरे हुये राज्यों की सुगठित सैन्य-शक्ति; उसी प्रकार ईरान की सेनाओं में ईरानियों के अतिरिक्त, भारतीय वीर भी अलेकजेन्डर के विरुद्ध युद्धरत थे ।

शशिगुप्त नामक एक भारतीय शासक ईरान की ओर से अलेक्जेन्डर से युद्ध कर रहा था।

अलेक्जेन्डर अपने प्यारे बुकीफलस पर इधर-उधर भाग-दौड़ में तत्पर था तथा अपने सेनापतियों को स्वयं निर्देश करता जाता था। जिधर बुकीफलस निकलता एक बिजली-सी कौंध जाती थी। बुकीफलस के अंग-अंग में अलेक्जेन्डर की ही भांति युद्धोन्माद भरा हुआ था। वह बाला-साथी था।

डेरियस के सेनापति अरिबजेन ने अपनी विशाल सैन्य-शक्ति के साथ अनेक बार यूनानी सेना को छिन्न-भिन्न करने की विफल चेष्टा की और उसे ग्रीस के सक्षम सेनापतियों के समक्ष पीछे हटना पड़ा।

अन्ततः डेरियस के पैर उखड़ गये। वह भाग खड़ा हुआ। डेरियस के मैदान छोड़ते ही अरिबजेन भी भागा और तब ईरानी पहाड़ों की ओर खदेड़ दिये गये।

विजयोल्लास सहित अलेक्जेन्डर ने डेरियस के कैम्प में प्रवेश किया। वहाँ पहुँच कर वह अट्टहास कर उठा—"ओ : डेरियस, यह तुम्हारा कैम्प है? पर्सिया के शाह का कैम्प, ह : ह:, ह:—खशयार्श के पुत्र के पुत्र का युद्ध-खेमा; जिसका अधिकारी भाग गया। ईरान का शासक भाग गया।......"

तभी वह कैम्प के बाहर आया और वहाँ एकत्र अपने विजयी सेनापतियों तथा सेनानियों को सम्बोधित कर बोला—"ऐ मेरे बहादुर सेनानियो! ऐ ग्रीस के प्रबल योद्धाओ! आनन्द मनाओ। अधिकाधिक मदोन्मत्त हो जाओ। जितनी चाहो मदिरा ढालो। नृत्य करो। विजय के गीत गाओ। आज अलेक्जेण्डर की शक्ति ने डेरियस पर विजय प्राप्त

नहीं की है। आज ग्रीस ने पर्सिया को जीता है। आज यूनान ईरान पर विजयी है।

"मेरे बहादुरो! तुम सबको ज्ञात है; ग्रीसवासियो! तुम्हें अपना वह इतिहास स्मरण है जब अकारण ही इसी डेरियस के बाबा खशयार्श ने ग्रीस को पददलित किया था। हमारे मन्दिरों-मूर्तियों को ध्वस्त किया था। हमारे नगरों से अतुल धनराशि यह लूटकर लाया था।

"आज अरबेला के युद्ध में विजय तुम्हारी हुई है। आज तुमने अपने उस विगत अपमान का कसकर प्रतिकार लिया है। प्रसन्न होओ। आज तुम्हें सूसा की अतुल सम्पत्ति, सोना, चांदी, मणि-माणिक्य प्राप्त हुये हैं। मेरे वीरो! घबड़ाओ नहीं, अभी हमें पर्सीयोलिस में अपार धन मिलेगा। लूटो, जितना लूट सको···"

"सम्राट् अलेक्जेण्डर की जय······विजयी अलेक्जेण्डर की जय··· मकदूनिया जिन्दाबाद, ग्रीस जिन्दाबाद······" के जयकारों से आकाश प्रकम्पित हो उठा।

"यह किसकी चीत्कार है?···रणस्थल में किसी का रुदन-स्वर?" कहते हुये अलेकजेन्डर अपनी भोजन की मेज पर से उठ खड़ा हुआ। उसके हाथ में मदिरा का पात्र था जो हाथ पर ही टिका का टिका रह गया। उसकी आकृति में न जाने कितनी रेखायें खिंची और कितनी विलीन हो गयीं।

उसने पुनः कड़ककर कहा—"वहाँ कौन है?"

तत्काल ही, तत्परतापूर्वक, कैम्प के पीछे के प्रवेशद्वार से एक अतीव रूपवती नारी का सौंदर्य रात्रि के उस कोलाहल में प्रकट हो गया। मशालों के प्रकाश में उस रूप-सौष्ठव को देखकर एक बार अलेक्जेण्डर भी स्तम्भित रह गया किंतु तत्काल ही उसने अपने को सुस्थिर कर

तुरन्त प्रश्न किया—"तुम कौन हो ? क्या चाहती हो ? क्यों रोती हो ?"

रूप की वह चन्द्रिका ठिठुक कर शान्त हो गयी थी। वह रूपसी निर्वाक् भूमि पर दृष्टि गड़ाये खड़ी थी। उसके विशाल नेत्रों में सूखे आंसुओं के चिह्न तब भी दीख रहे थे।

तभी भारतीय नरेश शशिगुप्त ने—जो उस समय तक अलेक्जेण्डर की ओर से लड़कर उसका मित्र बन चुका था—कहा—"ईरान के सम्राट् डेरियस महान् की महाराज्ञी सितारा !"

"हः हः हः—तुम क्या कहते हो ? डेरियस अब सम्राट् कहाँ है ? डेरियस अब महान् कहां है ? भगोड़ा ! वह तो भाग गया। अब तो उस का राज्य हमारा राज्य है। अब तो···," मदिरा के उन्माद में अलेक्जेंडर कहता गया।

"सावधान ! विजयी—तुम, अलेक्जेण्डर ! और इतने अभद्र ! तुम्हें यह व्यवहार भी नहीं आता कि एक स्त्री के समक्ष कैसे बात करनी चाहिये ? तुम्हें यह भी ज्ञान नहीं कि ईरान के शाह की पराजय उसकी रानी के समक्ष प्रकट करना मूर्खता कही जावेगी—महान् मूर्खता ! हम पर अब अपने गर्व का प्रदर्शन क्यों करना चाहते हो ? तुम्हारे शौर्य-पराक्रम की कीर्ति तो वैसे ही ईरान के वायुमण्डल पर गूँज रही है। हम पर अब वह अहंकार क्यों व्यक्त करना चाहते हो ? हमारा अब शेष ही क्या है···।" कहते हुए ईरान की सम्राज्ञी ने कोमल स्वर में पुकारा—"मां ! बाहर आ जाओ। डरो मत। जब तुम्हारा डेरियस चला गया तो अब यह अलेक्जेण्डर हमारा क्या कर सकता है ? बच्चो ! जोहरा, शहरयार, खश्या बाहर आओ ! देखो—इस आततायी अलेक्जेण्डर को देख लो ! इस आदमी को देखो—जिसने तुम्हारे शहन्शाह को मार डाला है। जिसने तुम्हारे ईरान को कुचल डाला है···" कहते-कहते ईरान की सम्राज्ञी सितारा अनायास रुक गई।

अलेक्जेण्डर जैसे निर्जीव, मौन, निर्वाक् खड़ा का खड़ा रह गया।

उसके हाथ में मदिरा-पात्र हिम की भाँति जम गया। शशिगुप्त निकट ही चित्रवत् खड़ा था। तब तक अलेक्जेण्डर के कुछ अन्य सेनापति भी कैम्प में आ पहुँचे थे जो रणस्थली की उस अरूप कर्कशता में उस रूप को देख कर आश्चर्यान्वित हो रहे थे।

तभी पुनर्वार स्वर गूँजा। उस स्वर में कंपन किन्तु अलेक्जेण्डर-सी दृढ़ता थी। सितारा ने बच्चों को सम्बोधित करके कहा—"शहरयार! और खश्या भी देख लो! यह अलेक्जेण्डर तुम्हारे सामने खड़ा है। वह देखो, वह लोहे का टोप पहने बीचोंबीच, हाथ में शराब का प्याला लिये खड़ा है। इसे देख लो। तुम्हारे पूर्वजों ने यूनान तक जाकर इनका दर्प चूर-चूर किया था। तब वे यूनान के लिये आततायी थे। तब यूनान के बच्चे पैदा हुये। अलेक्जेण्डर पैदा हुआ। उसने अपने पूर्वजों का बदला लिया। अब यह आततायी बनकर ईरान पर आया है। तब तुम अपने पूर्वजों का बदला लेने—डेरियस का बदला लेने फिर यूनान जाना। जाओगे न...तब प्रतिकार, प्रतिहिंसा और युद्ध का यह क्रम चलेगा। सदा चलेगा। शताब्दियों चलेगा।" सुनकर छोटे बालक रो पड़े और सितारा भी हाँफ गयी ज्यों उसकी श्वास-नलिका रुक रही हो।

अलेक्जेण्डर का समस्त विजयोन्माद तुषार की भाँति विलीन हो गया। उन स्त्रियों के प्रति सम्मान एवं अपनी विजय के प्रति हर्ष-ग्लानि के मिश्रित भावातिरेक में वह पहले तो शांत ही बना रहा और सितारा की प्रत्येक बात सुनता रहा तब अपने को सुस्थिर कर उसने प्रारम्भ किया—"ईरान की सम्राज्ञी! मैं आपका अभिवादन करता हूँ। माँ, रोओ मत! बच्चो! चुप हो जाओ। तुम्हारा शाह डेरियस जीवित है। वह मरा नहीं है..."

"तब—तब बताओ हमारे शाह की ढाल कहाँ है? बोलो, उसके कपड़े कहाँ हैं?" डेरियस की माँ विलाप कर उठी।

"कहीं नहीं मां। उन्हें वह पहने हुये है?" अलेक्जेण्डर बोला।

"तब वह कहाँ है ? वह कौन पाजी है ? उसे मेरे सामने लाओ जिसने यह कहा था कि मेरा बच्चा—मेरा डेरियस मार डाला गया।" कहते हुए ईरान की राजमाता उत्तेजित हो गयी—"लेकिन ! नहीं, तू अलेक्जेण्डर झूठ बोलता है। तूने मेरे बच्चे को अवश्य मार डाला। जब तूने मेरे हजारों बच्चों को मार डाला तो उसे भी अवश्य मार डाला होगा।"

अलेक्जेण्डर के पास इस तर्क का कोई उत्तर न था। किंतु उसे कहना पड़ा—"नहीं मां ! डेरियस जीवित है। सम्राज्ञी इन्हें समझा दीजिये ! शाह जीवित है।"

"मां ! शांत हो जाओ। बच्चो, चुप हो जाओ।" सितारा ने उनको आश्वस्त करते हुए कहा—"तब हमारी शाह से कब और कहाँ भेंट होगी ?" सितारा ने प्रश्न किया।

"हम नहीं कह सकते ? किंतु आप चिंता न करें। हम उनकी खोज स्वयं करवायेंगे। तब तक आप हमारे साथ रहें। हम आपको ससम्मान, पूर्णतः सुरक्षित रखेंगे···।" कहते हुए अलेक्जेण्डर ने एक पुकार लगायी—"एंण्टीगोनिस !"

तत्काल सेनापति ऐंटीगोनिस समक्ष उपस्थित हुआ।

"ऐंटीगोनिस ! इनको अपने संरक्षण में लो। ध्यान रखना—सम्राज्ञी तथा राजमाता की मर्यादा पर किंचित ठेस न पहुँचे !"

सभी वहाँ से हट आये। अलेक्जेण्डर ने स्वयं सबको वहाँ से हटा दिया। उसके बाद उसने भोजन नहीं किया। मेज़ पर रखा आधा भोजन वैसे ही उठा लिया गया।

और उसके कानों में सितारा का एक-एक शब्द तीखे भालों की नोकों की तरह चुभता रहा। वह सोचता रहा–वे स्वर उसके कानों में गूँजते रहे-यह अलेक्जेण्डर तुम्हारे सामने खड़ा है। वह देखो वह लोहे का टोप पहने, बीचोंबीच, हाथ में शराब का प्याला लिये खड़ा है। इसे देख लो। तुम्हारे

पूर्वजों ने यूनान तक जाकर इनका दर्प चूर-चूर किया था। तब वे यूनान के लिए आततायी थे। तब यूनान के बच्चे पैदा हुये। अलेक्जेण्डर पैदा हुआ। उसने अपने पूर्वजों का बदला लिया। अब यह आततायी बनकर ईरान पर आया है। तब तुम अपने पूर्वजों का बदला लेने—डेरियस का बदला लेने फिर यूनान जाना। जाओगे न'''तब प्रतिकार, प्रतिहिंसा और युद्ध का यह क्रम चलेगा। सदा चलेगा। शताब्दियों चलेगा। अलेक्जेण्डर ने अपने कानों में उंगलियाँ लगाकर कान बन्द कर लिये। वह उस तर्क के तथ्य को सोचता ही चला गया—सोचता ही चला गया।

३२

◇ ◇ ◇

रात्रि व्यतीत हो गयी। श्मशान-वैराग्य की भाँति अलेक्जेण्डर का वह भावातिरेक भी रात्रि के अन्धकार में घुल गया और प्रभात होते ही वह पुनः नव अभियान के हेतु तत्पर हो गया। उसने अपना पग टेका तो अपनी सबल सैन्य सहित वह ईरान के समृद्धिशाली, परम वैभव-सम्पन्न, सूर्य के साम्राज्य के नीचे सर्वाधिक धनाढ्य नगर पार्सीयोलिस पहुँच गया।

तब अलेक्जेण्डर ने, उसके सैन्याधिकारियों ने, उसके योद्धाओं ने पार्सीयोलिस की भव्यता पर दृष्टिपात किया। उन्होंने देखा कि पार्सीयोलिस के राजभवन किसी भी प्रकार ग्रीस के परम प्रसिद्ध राज-प्रासादों से कम नहीं है। कम नहीं—भव्यता में वह उनसे अधिक है।

मेरवत्स की तराई में इस्सर नगर के निकट से अलेक्जेण्डर निकल रहा था। यह संसार का प्राचीनतम नगर कहा जाता था। इसी से कुछ मील दूर पर्वत-मालाओं से घिरे ईरान के भव्य राज-प्रासाद सुनसान किंतु दर्शनीय शालीनता में अवस्थित थे। काले पत्थरों व पर्वतों की पृष्ठभूमि पर स्थिर ये श्वेत संगमरमर के कीर्तिमान राज-प्रासाद परम शोभनीय थे। दूर से ही बड़े-बड़े चबूतरे दिखाई दे रहे थे जिनके आगे की धवल

सीढ़ियों के दोनों ओर राज-प्रासादों की विशाल अट्टालिकायें दिखाई दे रही थीं। इन पृथक्-पृथक् चार राज-महालयों में एक सबसे विशाल खशयार्श का प्रासाद था तथा उससे छोटा डेरियस था। पार्श्ववर्ती दो प्रासादों में एक राज-महिषियों के हेतु एवं दूसरा राज्य-कार्य के प्रयोग में आता था। इनकी ऊँची-ऊँची मीनारों तथा विशाल खंभों पर टिकी सभा-भवनों की छतें ईरानी वास्तुकला तथा भवन-निर्माण-कला के सजीव उदाहरण थे।

अलेक्जेण्डर ने यह सब देखा। इस स्थान का नामकरण अलेक्जेण्डर ने ही ग्रीक-भाषा में पार्सीयोलिस किया।

तब संसार के सर्वाधिक धनाढ्य नगर पार्सीयोलिस की अतुल सम्पत्ति की लूट आरम्भ हुयी। पार्सीयोलिस के कोषालय का एक लाख बीस हजार टैलेन्ट[1] से भी अधिक मूल्य का स्वर्ण, रत्न-भाण्डार, हीरक-मणियाँ ऊँटों व खच्चरों पर लाद-लादकर ग्रीस पहुँचाई गयीं।

पार्सीयोलिस में अलेक्जेण्डर चार मास तक विजयोत्सव मनाता रहा तथा भावी आक्रमण की योजनायें निर्धारित करता रहा। उत्तरापथ का पर्वतीय शासक शशिगुप्त उसके साथ था जिसने उसको उत्तरापथ वाहीक-खण्ड एवं उससे आगे के आर्यावर्त का सम्पूर्ण विवरण बताया था। अलेक्जेण्डर को उससे अधिक और क्या सहायता प्राप्त हो सकती थी?

भौगोलिक सीमाओं का विवरण जानकर, शशिगुप्त द्वारा व्यक्त उत्तरापथ की ऐतिहासिक व राजनीतिक स्थिति सुनकर अलेक्जेण्डर ने समझा कि जिस प्रकार मकदूनिया के विजेता के लिये ग्रीस की स्थिति

१. टैलेन्ट—ग्रीस की मुद्रा

थी उसी प्रकार उत्तरापथ की भी है। उसने अनुभव किया कि एकछत्रीय शासन के अभाव में जिस प्रकार मकदूनिया ने ग्रीस को विजित किया है उसी प्रकार वह उत्तरापथ और तब सम्भव हुआ तो शेष भारत पर भी मकदूनिया की विजय-पताका फहरावेगा।

एक ओर पार्सीयोलिस में अलेक्जेण्डर अपनी युद्ध-रचना की योजनायें बना रहा था, दूसरी ओर उत्तरापथ के जनपदों के कान हिलने प्रारम्भ हो गये थे। अब उन्हें ज्ञात हो रहा था कि सुदूर पश्चिम की एक शक्ति सुदूर पूर्व की ओर बढ़ती चली आ रही है। अब वे समझ रहे थे कि वह बलवान आक्रान्ता एशिया माइनर को पार कर, ईरान को कुचल कर पार्सीयोलिस की छाती पर बैठा है और अब आगे आने में उसे उतना समय भी न लगेगा कि जितना एक प्रहार खाकर पीठ सीधी करने में लगता है।

अलेक्जेण्डर जब पार्सीयोलिस में ही था तभी कैकयराज पोरस ने अपनी व अपने विजित देशों की सैन्य-शक्ति का गठन प्रारम्भ कर दिया। अभिसार ने अपनी सेनायें बढ़ानी प्रारम्भ कर दीं।

अश्वक, गौर, उद्यान, नीसा व पश्चिमी गान्धार की गण परिषदों के अधिवेशन होने प्रारम्भ हो गये। अग्नि-शिखा को देखकर जल के लिये भाग-दौड़ प्रारम्भ हो गयी। अश्वक, गौर, उद्यान, नीसा एवं पश्चिमी गान्धार की गण-परिषदों से एक ही से स्वर आ रहे थे—यदि उत्तरापथ पर आक्रमण हुआ तो गान्धार, कठ, अभिसार, कैकय तो दूर हैं; पहले हम पर ही वज्रपात होगा। अब तक अलेक्जेण्डर की शक्ति व विजय-गाथाओं की जो सूचनायें उत्तरापथ में प्रसारित हो रही थीं, उनके आधार पर—'पृथक-पृथक क्या समस्त उत्तरापथ की सम्मिलित शक्ति को भी उसे हटाने में समय लगेगा'—यह सोचा जा रहा था।

गान्धारराज आम्भी शान्त बैठा आनन्द की वंशी बजा रहा

था। उसने कुछ सोचा था अतः वह इस समस्त सतर्कता को अलस-उदास भाव किन्तु गूढ़ मनन सहित देख रहा था।

तभी एक सुहानी रात को पार्सीपोलिस के राज-महालयों में आनन्दोल्लास मनाया जा रहा था! अलेक्जेण्डर डेरियस की ही भान्ति ईरान के शाह का वेश धारण कर उस भव्य राजसिंहासन की स्वर्ण-पीठिका पर पीठ टिकाए बैठा था। समक्ष ही राजसभा लगी हुयी थी। ईरान रमणियां सेनापतियों के मदिरा-पात्रों में सुराहियों से तरल मदिरा ढाल रही थीं।

अलेक्जेण्डर रूपसियों के सौन्दर्य से उदासीन किन्तु मदिरा के हलाहल से ओतप्रोत ग्रीस के एरिका की परम सुन्दरी राजनर्तकी थेस के नृत्य में लीन था।

थेस मदिरा एवं नृत्य-प्रदर्शन की परम उद्दीप्ति में उस समय अपने दोनों हाथों में दो जलती मशालें लिये हुयी थी।

तभी एक नारी ईरानी अवगुण्ठन में प्रकट हुयी और निमिष-मात्र में उसने अपने पार्श्व से एक कटार निकालकर अलेक्जेण्डर की ओर फेंक दी। कटार सिंहासन के स्वर्ण से टक्कर खाकर झन्न का स्वर प्रकट करके अलेक्जेण्डर की गोद में आ गिरी। यदि अलेक्जेण्डर उस क्षण, किंचित अपना सर हिला देता तो कटार उसका मस्तक बेध देती।

तत्काल ही सबल सैनिकों ने आगे बढ़कर उस स्त्री को दो ओर से घेर लिया।

सर्वत्र सन्नाटा खिच गया। थेस का नृत्य स्थिर हो गया। अलेक्जेण्डर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। तभी समक्ष सैनिकों से घिरी उस नारी ने अपना अवगुण्ठन हटाया। वह ईरान की परम रूपवती सम्राज्ञी

सितारा थी जिसके प्रणय-निवेदन को अभी दो घण्टे पूर्व ही अलेक्जेण्डर ने ठुकरा दिया था।

थेस भी ग्रीस देश की नारी थी। उसमें भी अपने देश की मर्यादा का रक्त प्रवाहित हो रहा था। भले ही वह राज-नर्तकी अथवा एक गणिका का जीवन व्यतीत करती थी किन्तु उसकी शिराओं में ग्रीस का रक्त और हृदय में ग्रीस का अतीत हिलोरें लेता था। उसने भी सुना था कि ईरान ने कभी उसके देश की मर्यादा को कुचला था। उसने भी जाना था कि आज जो नारी उसके समक्ष उसके सम्राट् की हत्या करने को उद्यत हुयी थी वह भी ईरान की प्रतिहिंसा को, सम्भवतः दोहराने आयी थी; अतः उसी उत्तेजना-उद्रेक में—वातावरण के पुनः शान्त होने पर थेस ने अपना नृत्य-कार्यक्रम प्रारम्भ किया और उसी प्रकार अपने दोनों हाथों में दो मशालें लेकर नृत्य की भाव-भंगिमायें प्रकट करने लगी।

क्षण-भर में ही एक लास्य की प्रखरता में थेस ने चीत्कार भर कर कहा—"फूंक दो इस देश को।"

और तत्काल उसने अपनी दोनों मशालें दो ओर फेंक दीं। निमिष मात्र में राजसभा में बिछे भारी ईरानी कालीन जल उठे।

मदिरा के उद्रेक में अलेक्जेण्डर भी चिल्ला उठा—"फूंक दो", और वह स्वयं भी एक सैनिक प्रहरी से मशाल छीनकर दौड़ा तथा उसने मशाल को ऊपर उछाल दिया।

पल-भर में पार्सीयोलिस के भव्य राज-महालय धू-धू कर जल उठे।

अलेक्जेन्डर की सेना ने भी तब लूट के अनन्तर पार्सीयोलिस के नगर-भागों में आग लगा दी और समूचा पार्सीयोलिस धू-धू कर जल उठा।

३३

◇ ◇ ◇

अलेक्जेन्डर आगे बढ़ गया।

किन्तु

पार्सीयोलिस की लपटों की आँच की गरमी उत्तरापथ में पैठ गयी। अग्नि-शिखायें दूर उत्तरापथ से दिखायी दे रही थीं। पार्सीयोलिस के ध्वंस के ज्वलन की जो वायु पश्चिम से उड़कर पूर्व की ओर वह आयी तो उसने वाह्लीक प्रान्त की शीतलता और बर्फीली शान्ति को पिघला दिया। उत्तरापथ की जो प्राचीरें मौन-शान्त स्थिर खड़ी थीं वे पार्सीयोलिस से धू-धू कर उठते अग्नि के घोष से दहल उठीं। ज्यों एक में सिमटकर अग्नि के अँगारे ऊपर उठ रहे थे, उसी भाँति उत्तरापथ एक में सिमटकर उस ओर देखना चाहता था जिससे कोई उसकी ओर न देख सके किन्तु वह उसे—उस अग्नि को उस प्रकार देख नहीं पाया।

और वायु का वेग भी पश्चिम से पूर्व की ओर था अतः वह सब बवंडर भी उसी ओर बढ़ता दिखायी दे रहा था।

इसी पश्चिमी वायु का अनुभव कर अभिसार अपने पूर्व-निश्चय पर सजग हो गया। उसने कैकय-कुमार किरात का पोरस से पुनः वरदान मांगा। पोरस तो तत्पर था किन्तु किरात ने उत्तर दिया—"मैं अपना

निर्णय अभी और रुककर दूंगा, पिता जी !"

सूचना अभिसार-राज तिष्यदेव तक पहुँची और उसको प्रत्यंगिरा ने भी सुना। तिष्यदेव शीघ्रता की चाहना में भी शान्त हो गया किन्तु प्रत्यंगिरा अधीर हो उठी और उसने स्वयं किरात से भेंट करने का प्रस्ताव अपने पिता से किया।

अपने पिता की अनुमति पाकर अभिसार-युवराज्ञी प्रत्यंगिरा ने राजगृह की ओर प्रस्थान किया।

किरात ने ध्यान किया था कि एक नारी के प्रसंग को लेकर अथवा उससे प्रतिकार लेने के हेतु किसी सैन्य-शक्ति अथवा बल-प्रयोग की बात सोचना ही मूर्खता है किंतु वह किसी भी प्रकार प्रियम्वदा से प्रतिकार लेना ही चाहता था। अब वह उसका वैयक्तिक प्रश्न बन गया था।

कठराज समिद्धार्थ अथवा कठ-जनपद का कोई दोष था भी नहीं और जहाँ तक प्रश्न आम्भी का था—उसका भार स्वयं कैकयराज पोरस ने ले लिया था कि वह अपमान किरात का अथवा उसके पुत्र का क्यों वह अपमान तो पोरस अथवा कैकय का है और उसी उद्देश्य से गान्धार के शासन ने वह सब भूमिका बनायी भी थी।

अस्तु, किरात सोच रहा था कि कठ-राजकुमारी प्रियम्वदा से प्रणय-अभिनय का नाट्य रचकर उसे अपमानित किया जाय। उसने अपनी योजना भानुवर्मा को भी बतायी। उस पर भानुवर्मा ने कहा—"तुम भी क्या पुरुष हो। नारी से प्रतिकार की भावना रखकर किस वीरता और बुद्धिमत्ता का परिचय देना चाहते हो? हः, छोड़ो भी। और फिर मूलतः अपराध तो आम्भी ने किया था। वह बेचारी तो एक उपकरण थी सो पिस गयी······।"

"तुमने कभी समझदारी की बात न की भानुवर्मा! तुम जानते हो

कि वह देवी जी आम्भी के प्रणय-अनुराग में अपने पिता के सामने से दुःशील बनी हुयी हैं। जब यह सूचना आम्भी को प्राप्त होगी कि कैकयराज किरात प्रियम्वदा के प्रति प्रणय-व्यवहारों का प्रदर्शन कर रहा है तो क्या प्रकारान्तर से यह उससे प्रतिकार न होगा और तब क्या वह रोष में बिम्बाफल न बन जावेगा ?"

"कभी नहीं। इसे नैतिक व्यवहार कभी नहीं कहा जा सकता। यह सर्वथा अनुचित होगा। एक तो इसका ज्ञान होते हुये भी कि अमुक व्यक्ति की स्नेहमयी भावनाएँ अमुक पर आश्रित हैं और तब कोई उसमें अपना आरोपण करना चाहे तो यह अन्याय, अथवा अनधिकार ही नहीं मूर्खता कही जायेगी। दूसरे, प्रयत्न करके किसी नारी के प्रति इस प्रकार का प्रदर्शन महान् लम्पटता से अधिक कुछ नहीं। तीसरे इस प्रसंग में होगा क्या ? प्रियम्वदा की एक ही ताड़ना में राजगृह के सूने राजपथ दिखायी देने लगेंगे······।"

"अच्छा शान्त हो जाओ।" बीच में टोककर किरात ने कहा।

"वह तो मैं समझता हूँ और मैं यह भी जानता हूँ कि तुम अपनी इस स्वेच्छाचारिता से वर्जित भी नहीं किये जा सकते। तब ठीक है—परिणाम भोगना······।"

"तुम्हें मेरे साथ सांकल चलना होगा।"

"मैं कदापि-कदापि-कदापि सांकल नहीं जाऊँगा।"

"तुम्हें चलना-चलना-चलना पड़ेगा।" किरात ने मुस्कराते हुए कहा।

दो पल को निःस्तब्धता घिर आयी तब भानुवर्मा ने पुनः उत्तर दिया। ठीक है। मैं चलूंगा। मुझे चलना पड़ेगा। किन्तु तब मैं तुम्हारे मित्र, तुम्हारे सहयोगी के रूप में कदापि न चलूँगा। मैं चलूँगा तुम्हारे एक अंगरक्षक के नाते। तुम्हारे शरीर पर मैं आंच नहीं आने दूँगा किन्तु मन झीकेगा तो मैं रोक नहीं पाऊँगा। ठीक है चलो।"

अगले दिन ही किरात भानुवर्मा एवं एक अंग-रक्षकों की श्रेणि को लेकर सांकल की ओर चल दिया ।

"यह न हुआ घर पर रहकर सैन्य-संगठन करते, दुर्गों का निरीक्षण करते, प्राचीरों को सुदृढ़ करते—चल दिये दूसरे के देश की हरीतिमा को चूमने, कमनीयता के दर्शन करने, ललित कलाओं के वैभव-विलास का निरीक्षण करने । और ठीक भी है—तब तो बन्दीगृह के दर्शन हुए और लौट आये । सांकल के लावण्य की लालिमा को भली प्रकार देखा कहाँ था ?······" भानुवर्मा कहता जा रहा था । दोनों मित्र दो सलोने अश्वों पर आरूढ़ विभोर-वार्त्ता में संलग्न हो रहे थे ।

"क्या दुःख है ? मुझे भी कैसा नीरस, कैसा उपदेशक मित्र मिला है । जब देखो तब, दर्शन, जब देखो तब अध्यात्म, नीति-रीति उपदेश······।"

तभी विपरीत दिशा से पथिकों का एक दल सम्मुख आया । इस दल में आगे-आगे एक वृद्ध व्यक्ति चल रहा था । अवस्था उसकी छै सम्भवतः सात दशक पार कर चुकी थी । उसके केश पूर्णतः श्वेत थे और शरीर से भी जर्जर हो रहा था । उसकी ग्रीवा वार्तालाप में कभी-कभी हिल जाती थी ! तभी उसने किरात के अश्व के पार्श्व से निकलते हुये कहा—"सैनिको ! कहाँ जा रहे हो, भाई !"

कहीं से कोई उत्तर नहीं प्राप्त हुआ तब उसने पुनः अपनी दृष्टि को ऊपर उठाया और कह गया—"किसी सैनिक-अभिमान को जा रहे हो, क्या ? न, न, कहीं मत जाओ । घर लौट जाओ । स्वदेश लौट जाओ । देखो मैं ग्लुच्चुकायन में एक श्रेष्ठि के यहाँ सेवाकार्य करता था । ये मेरे सात पुत्र हैं । ये सब भी पृथक्-पृथक् नगर-श्रेष्ठियों के यहाँ सेवाकार्य करते थे । किन्तु मैं वहाँ से अवकाश ले आया हूं । मेरा घर

राजगृह है। वहाँ इन पुत्रों की मां है, इन सबकी पत्नियाँ हैं। तुम भी घर लौट जाओ। हम भी अपने घर जा रहे हैं। तुमने तो सुना ही होगा—एक भयंकर आक्रान्ता इसी ओर बढ़ा चला आ रहा है। सर्वत्र हंगामा मचा हुआ है। ग्लुचुकायन में एक और दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ हो गया है। तुम लोग कहाँ रहते हो? राजगृह नहीं रहते क्या? या इधर कहीं अपने घर ही जा रहे हो? तब जाओ।" कहते हुये वृद्ध पथिकों के समूह सहित आगे बढ़ गया और अश्वारोहियों पर अपने कथन का एक स्थायी प्रभाव छोड़ गया।

किरात तथा भानुवर्मा आगे बढ़ गये।

भानुवर्मा ने एक वाक्य कहा—"भारतीय वीर सैनिक-अभियान को कम, प्रणय-अभियान को अधिक तत्पर रहते हैं।"

भानुवर्मा के इस वाक्य को सुनकर किरात का अहं चीत्कार कर उठा। उसने तीक्ष्णता से अपना अश्व राजगृह की ओर घुमा लिया।

भानुवर्मा ने अनुभव किया, बात वह तीखी कह गया है अतः मैत्री-अनुरोध-पूर्वक उसने किरात को लौटाना चाहा। किन्तु किरात राजगृह लौट जाने को दृढ़ हो रहा था।

तत्क्षण, भानुवर्मा की दृष्टि जो समक्ष स्थिर हुयी तो उसने देखा कि अश्वारोहियों का एक दल सामने से आ रहा है, जिसका नेतृत्व एक स्त्री कर रही है।

शीघ्र ही किरात व भानुवर्मा की उलझन में वह दल निकट आ गया। भानुवर्मा अभिसार-युवराज्ञी प्रत्यंगिरा को देखकर मन्द मुस्कान में डोल गया। किरात के हृदय पर भानुवर्मा के वाक्य का भार अब भी बोझिल हो रहा था। अतः वह शुष्क हास्य भी न प्रकट कर सका।

प्रत्यंगिरा को किरात का वह स्वागत अरुचिकर एवं अप्रत्याशित-सा प्रतीत हुआ। उस क्षण सभी राज-मार्ग पर खड़े थे। कुछ अश्वों के मुँह राजगृह व कुछ के सांकल की ओर थे।

वातावरण से भानुवर्मा भी उद्विग्न हो गया और सोच गया कि किरात का उस समय का वह मौन व्यवहार की शालीनता नहीं अपितु आक्रोश की जड़ता है। और तब स्थिति को संभालते हुये भानुवर्मा ने प्रकट किया—"कैकय-राजकुमार ! युवराज्ञी प्रत्यंगिरा को राजगृह ले चलिये……"

विवश प्रत्यंगिरा ने व्यक्त किया—"किन्तु आप भद्रजन ! तो कहीं अन्यत्र जा रहे हैं ?"

"जा रहे थे किन्तु अब तो नहीं," भानुवर्मा ने ही उत्तर दिया।

किरात का मौन अब कुछ अधिक हो रहा था तभी उसका अनुभव कर व्यवहार की मर्यादा की उद्घोषणा में उसने कहा—"अभिसार-युवराज्ञी का हम स्वागत करते हैं। पधारिये।"

आत्मीयता के अभाव किन्तु औपचारिकता के सन्तोष को प्रत्यंगिरा ने भी समझा और किरात, प्रत्यंगिरा सहित सैन्याधिकारी भानुवर्मा अभिसार तक कैकय के सम्मिलित सैनिकों का नेतृत्व करता हुआ राजगृह लौट पड़ा। वह ध्यान कर रहा था—वस्तुतः जिस प्रकार की सूचनायें पश्चिमोत्तर प्रान्त से आ रही हैं उस आधार पर यदि कभी उत्तरापथ पर आक्रमण हो और वह अभिसार-कैकय की इस प्रकार की सम्मिलित सैन्य-शक्ति को ही नहीं अपितु समस्त उत्तरापथ—समग्र भारतवर्ष के सैन्य-बल का संचालन करे तो कैसा उत्तम हो ?

कुछ घंटों के प्रवास के उपरान्त प्रत्यंगिरा ने—"कुछ और प्रतीक्षा करें युवराज्ञी।" किरात का उत्तर पा तथा कैकयाधिपति पोरस का आशीर्वाद ले अभिसार की ओर प्रस्थान किया।

३४

◇ ◇ ◇

वह एक नगर था। नगर ही नहीं वह नगरों का नगर था। उसमें नाना प्रकार का व्यापार-वाणिज्य होता था। व्यवसायियों की लाभ-हानि का आदान-प्रदान होता था। वणिक् भाँति-भाँति की सामग्री यत्र-तत्र से एकत्र करके क्रय-विक्रय कर लाभ प्राप्त करते थे। वहाँ चिकित्सक रहते थे। वास्तुकला-विशारद, शिल्पकला-विशारद, मूर्तिकला-विशारद थे, जो देश-देशान्तरों का तुलनात्मक अध्ययन कर अपने देश की कला का प्रचार करते थे। साहित्यिक व्यक्ति थे। कवि, कलाकार, संगीतज्ञ नर्तक, कुश्ती लड़ने वाले। नट-कलाबाज, मनोरंजन करने वाले, सहायक, संरक्षक, मन्त्री सभी थे। राज-सभा के व्यक्ति, साधारण श्रेणी के व्यक्ति, तात्कालिक मुद्रा का लेन-देन करने वाले, कर्ज़ देने वाले। अधिक संख्या में स्त्रियां एवं नौकर-चाकर, क्रीत-दास इत्यादि भी थे।

वह नगर—एक चलता-फिरता नगर ही नहीं—राजधानी थी जो अलेक्जेन्डर के चतुर्दिक केन्द्रित रहती थी। जहाँ वह रुकता था वहीं यह नगर ठहर जाता था। जहाँ चलता था वहाँ चला जाता था। अलेक्जेन्डर के सैनिकों की आवश्यकता की प्रत्येक सामग्री इसमें उपलब्ध होती थी। सैनिकों का मनोरंजन करने के लिये हस्तलाघव के दंगल, मल्ल-युद्धों के

दंगल तथा संगीत-नृत्य-समारोह, समय-समय पर होते रहते थे।

कुछ तब अलेक्जेन्डर के कूच के साथ ही यह सब भी आगे बढ़ जाता था तथा उसके अस्थायी प्रवास के साथ रुक जाता था।

वह राजधानी साधारण राज्य की राजधानी नहीं एक विशाल शासक के विशाल साम्राज्य की राजधानी थी जो अलेक्जेन्डर ऐसे महान् योद्धा के व्यक्तित्व के चतुर्दिक चक्कर काटती थी। वहीं से बैठकर वह ग्रीस से लेकर उस स्थान तक के शासन की पूरी व्यवस्था करता था, जहाँ उसकी सेना कार्य-रत होती थी। कुटनीतिक, राजनीतिक, इतिहास-कार, भूगोल-विद्या-विशारद सभी अलेक्जेन्डर के साथ चलते थे।

उस सब का इति-वृत्तात्मक विवरण लिखा व रक्खा जाता था। एक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती थी।

यह नगर, नदियों—पहाड़ों को पार करता पूर्व की ओर बढ़ रहा था।

इन्हीं नगरवासियों ने धू-धू कर पार्सीयोलिस के महान् नगर को जलते देखा था। इन्हीं ने देखा : सुना :

"क्रेटर ! घेर लो। ब्रेन्चीडे के इस कस्बे को फूंक डालो। काट डालो यहाँ के एक-एक बच्चे को···।"

और क्रेटर ने मिलेटस के ग्रीक-सैनिकों का घेरा ब्रेन्चीडे के छोटे से नगर पर डाल दिया। सैनिकों ने चारों ओर से निरीह बच्चों, स्त्रियों एवं पुरुषों को एक स्थान पर एकत्र कर घेर लिया।

बालकों की चीखें, स्त्रियों की कराहें एवं पुरुषों के आर्तनाद के स्वर सैनिकों के हृदय में बैठते रहे और उनकी रक्तावर्तित आकृतियां बीभत्स हाथों में झूमती तलवारों तथा कटारों को नर-संहार करते हुए देखकर प्रसन्न होती रहीं। वे दानव वर्ष भर के नन्हें शिशुओं से लेकर

सौ-सौ वर्ष के वृद्धों के अंग-प्रत्यंगों को काटकर पिशाच की भाँति डरावनी आंखें निकाल कर खिलखिलाते रहे। तब उस नर-हत्या-कांड के अनन्तर पूर्ण शांति विराज गयी। चीत्कारें बन्द हो गयीं। मृत-शिशुओं के शोणित की धार मां के आंचल को, मां के रक्त की लालिमा पिता के हृद्-भाग को, पिता के रुधिर की अविकल ज्वलन सम्पूर्ण परिवार को रक्त-कूप में स्नान कराती रही। तभी सभी प्राणियों के तीव्र-स्पन्दन विलीन हो गये और उसके स्थान पर एकत्र होकर एक विकट रक्त-धार, भूमि पर, मौत की शान्ति सहित बह चली। सैनिकों के लोहे के भारी-भारी जूते उस रक्तस्राव में सन कर रक्त-पद-चिन्ह बनाते हुए डोलते रहे और वे चिल्लाते रहे—निकट ही अपने अश्व बुकीफलस पर अलेक्जेण्डर बैठा सुनता रहा।

"सम्राट् ! हमने अपने ही ग्रीसवासियों को काट डाला। हमारे सेनानी ने बताया है कि ये उन पातकियों के वंशज हैं जिन्होंने अपोलो के देवालय के विरुद्ध ग्रीस में कभी विश्वासघात किया था। ये उन पामरों के वंशधर हैं जिनके पाप की कहानी हम मिलेटस के सैनिक कभी भुला ही नहीं सकते। ये उन घातकों के पुत्र-पौत्र और उनके प्रपौत्र हैं जिन्होंने ईरान के शाह से ग्रीस के जीवन और प्रतिष्ठा का सौदा किया था। तब वह खशयार्श—वह ईरानी हिंसक इन्हें अपने देश में इस कारण ले आया था कि कहीं एकान्त में बसाकर इनके पाप का वह शमन कर देगा······हः हः हः !

"और उसने कब सोचा होगा कि ग्रीस के सैनिक कभी भूमण्डल के इस छोर तक भी आ सकते हैं ? बहादुरो ! यह लो······।" कहते हुए अलेक्जेण्डर ने ईरान के कोषालयों से प्राप्त स्वर्णरत्न-राशियां मुट्ठियां भर-भरकर सैनिकों पर उछाल दीं। सैनिक किलकारियां भरते, उन्हें लूटते रहे।

"किन्तु मनुष्य अपने ही देशवासियों के साथ, देश के साथ, धर्म के साथ भी विश्वास का हनन कर सकता है।" पीथन एक मित्र-गोष्ठी में कह रहा था। क्रेटर, निकानार, एन्टीगोनिस तथा कुछेक अन्य सेनापति आसपास बैठे मदिरापान कर रहे थे। अलेक्जेन्डर से लेकर सेना का छोटा से छोटा सेवक भी ईरान के मैदानों व पर्वतों की गर्मी में ईरान की मदिरा से अपने होठों की तृष्णा को शान्त करता था!

"इन ब्रेन्चीडे के वासियों ने ग्रीस के इतिहास पर एक कलंक स्थापित किया था..." निकानार बोला।

"क्या वह कलंक धुल गया?" ऐन्टीगोनिस ने प्रकट किया!

"क्यों नहीं?" प्लूटार्क बोला।

"प्रतिहिंसा की भावना को शान्ति भले ही मिली हो किन्तु यों जिन लोगों पर आज हमने वह आरोप स्थापित किया है वे तो उनके पाँच सीढ़ियों बाद के वंशज भी नहीं होंगे।", एन्टीगोनिस ने उत्तर दिया।

"देश के प्रति विश्वासघात के उदाहरण तो न जाने कितने देखने को मिलेंगे? अभी क्या हुआ है? इस शशिगुप्त[1] को ही देख लो, न। अपने देश के विरुद्ध यह सम्राट् का पूर्णतः सहयोग करने को तत्पर है। स्वार्थ अथवा अन्य शासकों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के अहं में सदा ही विश्वासघात का सृजन होता है।" अलेक्जेन्डर के वैयक्तिक, राजनैतिक सहायक कार्डिया ने कहा—"और ईरान के इस मेज्यूस को देखो। इस चाटुकारिता और देशद्रोह ने ही तो उसे बेबीलोन का क्षत्रप बनवा दिया है। देशद्रोह में नैतिकता का नाश हुआ, अथवा देश का घात हुआ तो हुआ स्वयं को सुख-समृद्धि तो प्राप्त हुयी।"

"कुछ हो, तर्क की भी विचित्र शक्ति है। कभी हम जिसे देशद्रोह—

---

१. शिशिकोहस—शशिगुप्त।

देश के प्रति स्पष्ट विश्वासघात कहते हैं—तार्किक उसे राजनीति अथवा कूटनीति की संज्ञा से घोषित करते हैं।" ऐन्टीगोनिस ने प्रकट किया।

"यदि देशद्रोह राजनीति है तो उस देश एवं उस राजनीति का स्वतः अन्त हो जाना चाहिये। विश्वासघात भी मानवता है तो ऐसे मानव से दानव श्रेयस्कर हैं।" केलस्थनीज़ ने कहा जिसमें अपने चाचा एरिस्ट्राटेल के बौद्धिक तत्वों का अंश समाविष्ट था।

"चलिये छोड़िये। सम्राट् की राजसभा का समय आ गया है, चलिये हम सभी चलें।" क्रेटर ने कहा और वह तार्किक दल संध्या-कालीन राजसभा की ओर बढ़ गया।

इधर ईरान आकर अलेक्जेन्डर का ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हो रहा था त्यों-त्यों वह अधिक ईरानी होता जा रहा था। उसने ईरानी वेष-भूषा अपना ली थी। ईरानी शाहों की भाँति वह अपनी राजसभा की संयोजना, समय-समय पर किया करता था। उस समय वह ईरानी-शाह की वेष-भूषा में होता था। वह बहुमूल्य ईरानी चोगा पहनता था जो मखमल का बना होता था; जिसमें बहुमूल्य रत्न व स्वर्ण के तारों और गोटे के बेल-बूटे बने होते थे। इस पर वह स्वर्ण-मुकुट धारण करता था। रेशमी सलवार तथा कामदानी के जूते पहनता था तथा पार्श्व में लटकी दो यूनानी तलवारों में से एक की रत्न-जटित मूठ पर उसका दाहिना हाथ सदैव रक्खा रहता था। इस प्रकार वैभव की सजीव प्रतिमूर्ति—अलेक्जेन्डर स्वर्ण-सिंहासन पर बैठकर स्वर्ण-पात्रों में मदिरा ढालता था जिसे ईरान की जनता देखती और तिरस्कार में भर जाती थी।

इसी प्रकार की एक राजसभा का आयोजन आज भी किया गया था जिसमें अलेक्जेन्डर सिंहासन पर विराजमान था तथा ग्रीस के कवि

उसके सम्मान में, उसकी यश:कीर्ति प्रकट करते हुये, कवितायें सुना रहे थे। उसके साथ ग्रीस के साहित्यिकों, इतिहासज्ञों, लेखकों का एक दल भी था जो नवीन प्रकृति-कृति, दृश्यों, वातावरण, जलवायु, सौंदर्य, सुषमा, घटना, कल्पना के आधार पर लेखन-कार्य भी करता जाता था। एरिस्ट्राटेल के भतीजे केलस्थनीज ने जो उसके साथ था, अलेक्जेन्डर की दिग्विजयों का इतिवृत्तात्मक इतिहास लिखा था। अन्य कवि भी साहित्य-सृजन कर रहे थे।

अस्तु, उस राजसभा में एक ओर अलेक्जेन्डर की प्रशंसा के गीत हो रहे थे और दूसरी ओर ईरान की अंगूरी मदिरा पात्रों में ढाली जा रही थी।

"यह गुणगान क्यों ?" अनायास, मदिरा की उद्दीप्ति में, अलेक्जेन्डर का परम मित्र क्लाइरस चीत्कार कर उठा।

सम्पूर्ण राजसभा में नीरवता छा गयी। अलेक्जेन्डर निर्वाक् क्लाइरस को देखता रहा कि वह क्या कहना चाहता है और तभी क्लाइरस कहता गया—"वह पर्मेनियो था, वह फिलोटास था, वह अटेलस था······नहीं वे न जाने कितने वीर-सेनानायक थे जिनके कारण अलेक्जेन्डर था। अलेक्जेन्डर के पिता ने युद्ध जीते थे···क्यों ! ये गीत क्यों गा रहे हो ? अलेक्जेन्डर ने क्या किया······?"

अलेक्जेण्डर में रोष भर आया किन्तु वह मौन बैठा क्लाइरस की बात सुनता रहा। वह उसका मित्र था—एक सहायक, अतः उसकी बात सुनने का धैर्य उसने अभी नहीं खोया।

"क्लाइरस ! क्या कह रहे हो···?" एक स्वर उस निस्तब्ध सभामंडप में गूँजा और शान्त हो गया। वह सेनापति क्रेटर की वाणी थी।

"इनसे पूछो। ये जो गीत गा रहे हैं, ये क्या कर रहे हैं ?···क्या कर रहे हैं, ये ?" क्लाइरस ने अपना स्वर तीव्र करते हुये प्रकट किया—"वे सेनापति थे···वे उनके सेनानी थे···उन्होंने वे···वो, वो भयानक युद्ध

जीते थे। उन्होंने एथेन्स जीता, उन्होंने पार्सीयोलिस जीता···अब वे ही तक्षशिला जीतेंगे। वे ही तक्शा···शिला जीतेंगे···[1]तक्षा-शिला।"

"क्लाइरस ! बन्द करो यह प्रलाप···"अलेक्जेन्डर ने कर्कश स्वर में सिंहासन से खड़े होते हुये कहा।

क्लाइरस तथा अलेक्जेन्डर दोनों ही मदिरा की तीव्रता में परम-आवेश में थे।

"एक सैनिक युद्ध पर विजय प्राप्त करता है। एक सेनानायक युद्ध पर विजय प्राप्त करता है और गुणगान होता है अलेक्जेन्डर का··· अलेक्जेन्डर का", क्लाइरस ने अपनी शक्ति भर तीव्र स्वर में कहते हुये सभा-मंडप को गुंजा दिया।

वह कहता ही गया—"अलेक्जे···" और स्वर आधे ही बाहर आये थे कि क्लाइरस के तीन टुकड़े भूमि पर आ गिरे। रुधिर-धार बह चली और अलेक्जेन्डर अपनी खड्ग वायु में उछाल पुनः सिंहासन के निकट आ खड़ा हुआ।

इसी क्षण बाहर से कुछ सैनिकों ने सभास्थल में प्रवेश किया।

अलेक्जेन्डर की दृष्टि घूमी तो उसने देखा—बख्त्री (बुखारा) के बन्दियों का एक भारी दल, दूर तक, मकदूनिया के सैनिकों से घिरा खड़ा था।

अलेक्जेन्डर ने पुनर्वार दृष्टि घुमायी। सबके आगे एक नारी-रूप की परम दीप्ति उभर रही थी, जिसके समक्ष अलेक्जेन्डर की दृष्टि अस्थिर हो रही थी। वह वैसा लावण्य था जिसके समक्ष अलेक्जेन्डर के समान स्त्रियों के महान् तिरस्कारी की दृष्टि प्रकम्पित हो गयी। वह वैसा मादक

---

१. तक्शा-शिला—तक्षशिला

लालित्य था जिसके समक्ष दिग्विजयी योद्धा अलेक्जेन्डर अन्तराल में नत-मस्तक हो रहा था। ऐसा उसके जीवन में कभी नहीं हुआ। उसके सामने संसार की एक से एक रूपवती नारी आयी और गयी। उसने किसी को दृष्टि भर देखा भी नहीं। इस समय भी उद्धत सैनिकों से घिरे उस सरल रूप के समक्ष वह दृष्टि भर नहीं देख पा रहा था और तभी अलेक्जेन्डर ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"ले जाओ, इन्हें यहाँ से।······ ठहरो! इस लड़की को हमारे कैम्प में पहुँचाओ!"

'ठहरो। इस लड़की को हमारे कैम्प में पहुँचाओ!'—स्वर दिशाओं से, ज्यों अनेक बार झंकृत हुआ। दिग्विजयी की उस विचित्रता को सुनकर उसके साथी भी विस्मयावर्तित हो रहे थे।

"तो तुम्हारा नाम—रुक्साना है। रुक्साना!"

समक्ष कोई उत्तर न पाकर अलेक्जेन्डर ने पुनः प्रारम्भ किया—"मुझे तुम्हारे मित्र— आक्जीयार्ट[1] की मृत्यु का दुःख है। क्या तुम मुझे माफ कर दोगी··· ?"

रुक्साना खेद की शालीनता में सुस्थिर खड़ी थी। उसके वे विशाल नेत्र—थिरक कर कभी अलेक्जेन्डर और कभी शून्य में लीन हो जाते थे। और अलेक्जेन्डर चिर-पिपासु-सा, चिर-अतृप्त-सा जीवन में प्रथम बार रूपसागर की उस गागर को अपने पर उंडेल लेना चाहता था।"

रुक्साना भीत कपोती-सी, अपने नेत्रों को अनेक बार, शीघ्रता में चलाकर, अपने थिरकते पैरों उस विश्व-विजेता के कैम्प से, उसकी अथक दृष्टि से बचकर उड़ जाना चाहती थी किन्तु वह उस पौरुष के उन्माद भरे वीर युवक को देखती भी रहना चाहती थी।

---

१. अस्सकेन

तभी अलेक्जेन्डर कह गया—"क्या तुम मुझसे शादी कर सकती हो ?"

उस एकान्त नीरव कैम्प में युद्ध की तीक्ष्णता के स्थान पर एक क्षण को रूप की नैसर्गिक कमनीयता एक ओर से दूसरी ओर तैर गयी और वह ईरानी षोडशी मुस्करा दी। प्रारम्भ से अन्त तक वह एक शब्द नहीं बोली थी। केवल उसके स्वरूप की मुद्राएं उसके रोष-तोष को व्यक्त कर रही थीं।

विजय के साथ ही समूचे बख्त्री में अलेक्जेन्डर के प्रणय-परिणाम के आनन्दोत्सव मनाये जाने लगे।

विश्व-विजेता को उस प्रथम नारी-रूप ने विजित किया।

३५

◇ ◇ ◇

"आचार्य, मैं एक भी तर्क सुनने को कदापि तत्पर नहीं हूँ। मुझे ज्ञात है, पोरस अवश्य युद्ध करेगा। मुझे इससे अच्छा सुयोग और कोई नहीं मिलेगा। गान्धार और कैकय का विरोध, पोरस और आम्भी का जन्म-जन्म का वैर अब समाप्त होकर ही रहेगा।......"

"गान्धारराज—पोरस जीत भी सकता है। आपकी सहायता की उसे परमावश्यकता है। यदि पोरस जीता तो वह उसकी नहीं समूचे उत्तरापथ, समस्त वाह्लीक खंड, समग्र आर्यावर्त की जीत होगी।"

"ओह! पोरस मकदूनिया के सम्राट से जीत भी सकता है? उससे जिसने सुदूर पश्चिम से लेकर सुदूर पूर्व के समस्त भूमण्डल को अपने अधिकार में कर लिया है। हः-हः, आचार्य, आपको क्या हो गया है? उसके स्थान पर मैं कभी अपनी स्थिति उस प्रकार के संशय में नहीं डाल सकता। मुझे वह उपहास कभी श्रेयस्कर प्रतीत न होगा, जिसमें उपहास के साथ हानि भी उठायी पड़े...... ।"

"महाराज! आप से मेरा ही नहीं समस्त उत्तराखंड की शक्ति का अनुरोध है कि आप पोरस के साथ रण-भेरी का आह्वान करें।......"

"असम्भव! आचार्य, असम्भव! आम्भी और पोरस साथ युद्ध

करें। कभी नहीं, कदापि नहीं। गान्धार इस बार कैकय से प्रतिकार लेकर रहेगा।"

"क्षमा कीजिये गान्धारराज, तब ऐसी आपत्कालीन स्थिति में वह प्रतिकार अब गान्धार व कैकय का नहीं महाराज आम्भी और पोरस का होगा।"

"आचार्य !"

"मैं सत्य कह रहा हूँ महाराज ! यदि ऐसा ही है तो मैं तत्काल परिषद् आमन्त्रित करता हूँ। उसका मत ले लिया जाय।"

"आचार्य ! मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। ऐसा कदापि न होगा।"

"महाराज पुनः विचार कर लीजिये।"

"प्रतिकार के अतिरिक्त मैं तक्षशिला के वैभव-सौन्दर्य को उस बर्बर विदेशी आक्रान्ता के हाथों नष्ट-भ्रष्ट नहीं होने देना चाहता।"

"यदि तक्षशिला का वैभव-सौन्दर्य नष्ट न हुआ और उसके स्थान पर गान्धारराज का स्वनाम-प्रतिष्ठा-मर्यादा, कायरता की चीत्कार में रौंद डाली गयी, तब। तब क्या होगा, महाराज ?"

"ऐसा क्यों होगा ? वह मेरा प्रतिकार होगा। वह मेरी बुद्धिमानी होगी। वह मेरी राजनीति होगी, आचार्य !" आम्भी कहता गया।

"एक बार अपमान को आत्मसात कर लेने पर वह स्वभाव बन जाता है, नरेश ! आप अपने व अपने स्वजनों एवं अपने देश के प्रति विश्वासघात न कीजिये गान्धारराज !"

"आचार्य ! मैं एक भी शब्द नहीं सुनना चाहता।"

"आप मुझे कैसे रोकेंगे ?"

"आचार्य ! हट जाइये मेरे सामने से···"

उत्तरापथ के परम प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, तक्षशिला विश्व-विद्यालय के आचार्य, गान्धार-जनपद के महामात्य आचार्य बीजगुप्त शान्तिपूर्वक आम्भी की राजसभा से उठ आये।

"प्रियंवदा ने किरात का राग अलापना प्रारम्भ कर दिया है। वह प्रत्यंगिरा से प्रतिकार लेना चाहती है। अब वह प्रणय-वह्नि के स्थान पर प्रतिहिंसा के ज्वालामुखी के मुहाने पर आ बैठी है।" कठराज समिद्धार्थ ने भानुवर्मा से प्रकट किया।

"तब ?"

"वैयक्तिक प्रणय भी राज्य-संचालन की गतिविधि का कोई उपकरण या कारण बन सकता है क्या, सैन्याधिकारी ?"

"तब कैकयराज पोरस ने आपकी सहमति चाही है और इच्छा प्रकट की है कि आप यूनान के आक्रान्ता के विरुद्ध आक्रमण—प्रत्याक्रमणों में महाराज पोरस के सहयोगी बनें।"

"हः, मैं कैकय के महान् अधिपति पोरस का सम्मान करता हूँ किंतु कठ-गण-तंत्र का अपना स्वयं अस्तित्व है। वह स्वतः किसी भी विदेशी आक्रांता से टक्कर लेने में समर्थ है।"

"किन्तु सहयोग की शक्ति पर भी महाराज का विश्वास होगा ही ?"

"इन राजनीतिक प्रश्नों पर सहयोग और विशेषतः कैकय से ? कभी नहीं, कदापि नहीं। कठ-जनपद अपने विरुद्ध अभिसार एवं कैकय के सम्मिलित सैनिक अभियान को अभी भूल नहीं गया है, राजदूत! महाराज पोरस से कह देना कि देश की मर्यादा की रक्षा की जितनी उन्हें चिन्ता है, उतनी ही हमें भी है। हमने प्रत्याक्रमण की पूर्ण व्यवस्था कर ली है। कठ अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ आक्रांता का विरोध करेगा। पोरस का सहयोग देकर पोरस की प्रतिष्ठा बढ़ाने से अच्छा होगा हम अपने स्वतंत्र अस्तित्व की ही रक्षा करें।" कठ-जनपद के गण-संवाहक वीरव्रत ने प्रकट किया।

"तब यह निश्चित है कि कठ-कैकय के सहयोग में नहीं स्वतन्त्र रूप

से युद्ध करेगा ? इस विशेष प्रसंग पर राजदूत की मर्यादा में कैकय के सैन्य-बलाधिकृत भानुवर्मा ने प्रश्न किया।

"पूर्णतः निश्चित···।"

तब खैबर की घाटी से होकर उस पश्चिमी आक्रांता की विशाल सैन्य-शक्ति के तूर्यों और युद्ध-वाद्यों के स्वर वायुवेग से उत्तरापथ के समस्त चौबीस जनपदों में पैठते चले गये।

३६

○ ○ ○

"मैंने समस्त उत्तरापथ को आमन्त्रित किया; अपनी ओर से सहयोग की कामना की—मिल जाता अच्छा था अन्यथा मुझे कोई चिन्ता नहीं। पोरस किसी भी बाह्य आक्रांता की प्रबल से प्रबल शक्ति से टक्कर लेने को स्वयं आवश्यकता से अधिक समर्थ है। वह अपने ही नहीं, समस्त उत्तरापथ, समस्त आर्यावर्त के सम्मान-रक्षार्थ भयानक युद्ध को तत्पर है। वह अजेय है। वह अजेय रहेगा···आम्भी! आम्भी को मैं जानता था। कठ पर मैंने सैनिक-अभियान किया था, इसको मैं मना नहीं करता··· किन्तु···।"

"विदेशी आक्रान्ता के विरोध में यदि कठ स्वतंत्र होकर लड़ना चाहता है, लड़े। उसे कौन रोक सकता है, महाराज?" महामात्य ने कैकयाधिपति पोरस की वार्ता समाप्त होते-होते जोड़ दिया।

"कठ वीर योद्धाओं का प्रदेश है महामात्य! किन्तु अलेक्जेण्डर की सैनिक-शक्ति का पूर्ण विवरण हमें प्राप्त है। क्या कठ स्वतंत्र रूप से उसके समक्ष टिक सकेगा?" पोरस ने व्यक्त किया।

"आप समझा ही तो सकते हैं। किन्तु आत्महत्या की ओर उन्मुख

कठ को या किसी को आप रोक कैसे सकते हैं, कैकयाधिपति !" महा-मात्य ने उत्तर दिया।

"होगा ! अलेक्जेण्डर के हेतु कैकय पर्याप्त है।"

अलेक्जेंडर उत्तरापथ की ओर उन्मुख हो गया। उसने भारत की वैभव एवं वीरगाथायें उसकी सीमाओं के निकट पहुँचते-पहुँचते सुन ली थीं। उसने शशिगुप्त सदृश देश-द्रोहियों से भारतवर्ष की विच्छिन्न राज्य-सत्ताओं का पूर्ण विवरण प्राप्त कर लिया था और उसको चलते-चलते एक पत्र भी प्राप्त हो गया था :

"मकदूनिया के सम्राट् ! ग्रीक के शासक ! दिग्विजयी अलेक्जेंडर महान् !

सादर अभिवादन स्वीकार करें।

तक्षशिला एवं समस्त गान्धार-जनपद आपके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछा रहा है। वह आपसे शांति की कामना करता है। गान्धार की सेना आपके स्वागत में, आपके सहयोग में आपको प्रस्तुत है। आप जिस प्रकार चाहें, इसका उपयोग करें।

आप सूचित करें कि आप तक्षशिला कब पधारेंगे जिससे तक्षशिला अपने मान्य अतिथि का समुचित सत्कार कर सके।

आदरास्था सहित—

विनत

आम्भी

(गांधारपति)

अलेक्जेंडर ने आम्भी के इस स्वस्तिवाचन को—भारत सदृश विशाल देश पर सैनिक-अभियान प्रारम्भ करने के पूर्व शुभ मंगल मानकर उस पत्र को यत्न से रख लिया।

उत्तरापथ में पहुँचने के लिये उसने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया। भारी संख्या में एक ओर तो उसने अपनी सेना को हेफेस्टियन के नेतृत्व में खैबर की घाटी से होकर उत्तरापथ की ओर भेजा। इस सैन्य-शक्ति के साथ क्रेटर, एन्टीगोनिस, पीथन सदृश रण-कुशल सैन्याधिकारी थे; जिनके साथ मकदूनिया के पर्वतीय वीर, ग्रीस दे बलिष्ठ योद्धा, एशिया माइनर तथा ईरान सदृश विजित देशों के सेनानी थे। ये धनुर्धारी भयंकर योद्धा, खड्ग, भालों से सुसज्जित, पैदल अश्वों एवं रथों में चल रहे थे। ईरान तथा भारत की पश्चिमी सीमा के निकट आते-आते अलेक्जेण्डर को रथ भी प्राप्त हो गये थे।

दूसरी ओर परम शक्तिशाली बुकीफलस[1] पर बैठकर विजेता अलेक्जेण्डर काबुल की घाटियों से होकर, हिन्दुकुश व सिंधु के पार्वत्य-प्रदेशों के शासकों को विजित करता आगे बढ़ रहा था। उसने इन पर्वतीय शासकों को बड़ी कठिनाई से जीता। आगे बढ़ते हुये पीछे का मार्ग सुरक्षित करता हुआ अलेक्जेण्डर उत्तरापथ की महान सिन्धु नदी के किनारे आ पहुँचा।

सिन्धु के किनारे अलेक्जेण्डर ने आनन्दोत्सव मनाये। सिन्धु की पूजा की। कुछ धार्मिक व्रत-विधान सम्पन्न किये और तब शुभ मुहूर्त में उसने कटक के निकट सिन्धु नदी को पार किया।

सिन्धु को पार कर वह ससैन्य आम्भी का स्वागत स्वीकार करने तक्षशिला की ओर बढ़ा।

तक्षशिला के उस राज्य-सिंहासन पर दिग्विजयी अलेक्जेण्डर प्रतिष्ठा-

१. बुकीफलस—जिसकी तुलना तदनन्तर महाराणा प्रताप के चेतक अश्व से की गयी थी।

पित था। गान्धार का शासक आम्भी ज्यों अपने भगवान के चरणों में वन्दना कर रहा हो, उस भाँति अलेक्जेन्डर के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा था। अलेक्जेण्डर भी ज्यों आम्भी को एक तुच्छ अनुचर मानकर उस ओर दृष्टि ही नहीं कर रहा था तथा भारत की वैभवशालिनी नगरी तक्षशिला के भव्य राज-सभा-भवन में एकत्रित अपने सैन्याधिकारियों की व्यस्तता की ओर निहार रहा था। तक्षशिला के संथागार में जो स्थान गान्धार के गण-परिषद् सदस्यों को निर्धारित थे, उन पर यवन-सेनापति सगर्व तथा सोल्लास बैठे थे। उनसे हटकर गान्धार के विशिष्ट जन सेवीय-भावना में आम्भी की कायरता की बीभत्स प्रतिक्रिया समेटे, विवश-आकुलता में, उदास आकृतियों में, दैन्य प्रदर्शित करते हुये खड़े थे। आज उनकी दशा पोरस के तक्षशिला-अभियान से कहीं अधिक निम्नतर थी।

राजसभा में स्थान-ग्रहण की व्यस्तता के अनन्तर एक पल को मौन विराज गया। अलेक्जेन्डर ने देखा कि केलस्थनीज, प्लूटार्क एवं अन्याय ग्रीस के लेखक तथा साहित्यकार भी स्वर्ण-सिंहासनों पर अवस्थित हैं। ग्रीस के उस गौरव-विजय के अवसर पर वे साहित्यकार भी प्रमुदित हो रहे थे। उल्लास में उनके नेत्र अलेक्जेन्डर से मिले और हास्य की रेखायें सर्वत्र खिच गयीं।

तभी केलस्थनीज़ ने खड़े होकर अपनी ग्रीवा किंचित झुकायी और ओठों पर हास्य झलकाते हुये उसने प्रारम्भ किया—

"ग्रीस व मकदूनिया के गौरव अलेक्जेण्डर महान, तक्षशिला के यशस्वी शासक आम्भी तथा अन्य उपस्थित जन :

"मैं अपने सम्राट् व देशवासियों की ओर से आप सबका हार्दिक-सम्मान करता हुआ तक्षशिलाधिपति आम्भी को बधाई देता हूँ कि उन्होंने हमसे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर अत्यधिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।

"हम आज ग्रीस के एथेन्स की ही भाँति भारत के इस सांस्कृतिक नगर तक्षशिला को देखकर अत्यधिक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। तक्षशिला के ये रमणीय हाट, यहाँ के ये भव्य राज-प्रासाद, यहाँ के नर-नारियों के मोहक व्यक्तित्व एवं सद्व्यवहार को देखकर हमें बड़ा सन्तोष हुआ है।

"तक्षशिला का विश्व-विद्यालय तो यहाँ की ही नहीं समस्त विश्व की एक प्रशंसनीय संस्था है। यहाँ के आध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, न्याय सांख्य, नीति, विज्ञान आदि-आदि विषयों की शिक्षा-पद्धति देखकर हमें अपने ग्रीस व एथेन्स का स्मरण हो रहा है। हमने तक्षशिला के सैनिक स्कन्धावारों को भी देखा। यहाँ के सैनिकों के व्यवहार, उनका कौशल देखकर हमें बहुत हर्ष हुआ है क्योंकि यहाँ तक पहुँचने के पूर्व हमारे सम्राट् को अनेकानेक युद्ध करने पड़े और हमें विदित हुआ कि तक्षशिला के सैन्य-विद्यालय से शिक्षा-प्राप्त सैन्य-कुशल सेनानी ही सर्वत्र छितरे हुये हैं। अस्तु, हमारा आपका यह सांस्कृतिक मिलन अत्यधिक अपेक्षणीय था और है।

"हमारा ध्यान है कि पश्चिम व पूर्व के सम्मिश्रण से एक नयी सभ्यता, एक नयी संस्कृति, एक नवीन दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ है।

"हमने युद्ध अवश्य किये हैं किन्तु सदैव ही सर्वत्र हमने मैत्री का हाथ युद्ध के पूर्व भी बढ़ाया और अनन्तर भी। यदि एथेन्स, स्पार्टा, कोरिन्थ की ही भाँति आपके उत्तरापथ के समस्त छोटे-छोटे राज्य एक ही शासन-सूत्र में आबद्ध हो जावें—सम्राट अलेक्जेन्डर के अधीन होकर केन्द्रित हो जावेंगे तो एक महान् ऐतिहासिक कार्य परिपूर्ण होगा; जिससे आपके देशवासियों को भी लाभ होगा। एक दूसरे का आदान-प्रदान बढ़ेगा।

"मिस्र की नील नदी की घाटी से लेकर सिन्धु के इस देश तक के प्रदेश को विजित कर हमारे सम्राट् अभी आगे बढ़ना चाहते हैं किन्तु

यह भी चाहते हैं कि जिस प्रकार तक्षशिला के शासक ने हमारे सम्राट् का स्वागत किया है वैसे ही सर्वत्र उनका स्वागत हो।

"आज एक नवीन विश्व-संस्कृति एवं विश्व-मैत्री का वातावरण उत्पन्न किया जाना परमावश्यक है।

"हम आपके इस स्वागत के अत्यन्त आभारी हैं तथा ग्रीस एवं भारत के सुसम्बन्धों की कामना करते हैं।"

इस प्रकार केलस्थनीज के भाषण के अनन्तर सर्वत्र हर्ष-ध्वनि प्रकट हुयी।

गान्धार के अतिरिक्त अन्य जिन छोटे-छोटे जनपदों ने अलेक्जेन्डर की अधीनता स्वीकार की थी उन्होंने अपने-अपने उपहार अलेक्जेन्डर को प्रस्तुत किये; जिनमें स्वर्ण-हीरक-रत्न भण्डार तथा बहुमूल्य भेंटें थीं। अलेक्जेन्डर ने भी प्रत्युत्तर में भारतीय शासकों को ग्रीस की कलाकृतियां, स्वर्णाभरण, धन-सम्पत्ति प्रदान थी।

तदनन्तर नृत्य-संगीत कार्यक्रम से वातावरण मुखरित हो गया।

तक्षशिला के निवासियों के अन्तराल परवशता के मौन-रुदन में डूब गये।

३७

◇ ◇ ◇

"जाओ अपने बर्बर अलेक्जेन्डर से कह देना कि उत्तरापथ का स्वाभिमानी शासक उससे युद्ध-क्षेत्र में भेंट करेगा।", महान् पोरस ने सगर्व अलेक्जेन्डर के राजदूत को उत्तर दिया और सन्धि-प्रस्ताव ठुकरा दिया।

"प्रत्यंगिरा ! मेरी बच्ची, तुम व्यर्थ आकुल होती हो। पोरस-अलेक्जेन्डर युद्ध प्रारम्भ होने को है। कैकयाधिपति ने अभिसार से भी सहयोग की कामना की है...।"

"तब...पिता जी ?"

"मेरी सेनायें कदापि न जावेंगी।"

"क्यों, क्या आपको उत्तरापथ के गौरव का ध्यान नहीं है, पिता जी ?"

"है, किन्तु पोरस ने मेरे गौरव का ध्यान कब किया ? मैंने सदैव ही कैकय को सहयोग दिया है। मैंने अनिच्छा से कठ पर उसके साथ आक्रमण किया। उसने मेरी मांग को स्वीकार नहीं किया।"

"इसमें उनका कोई दोष नहीं है पिता जी ! यह तो कैकय के

युवराज का अपना निर्णय है। वह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उनके योग्य नहीं हूँ।"

"नहीं, यह मिथ्या भाषण है। पोरस अपने पुत्र से अधिकारपूर्वक कोई काम नहीं करा सकता और उस पर आपत्तिकाल में हमसे सहायता की अपेक्षा करता है।"

"मैं कैकयाधिपति के सम्बन्ध में कह सकती हूँ कि उन्होंने आपसे कदापि सहायता न मांगी होगी अपितु उत्तरापथ के रक्षार्थ आपको कर्तव्योन्मुख किया होगा पिता जी !"

"वह कर्तव्योन्मुख करने वाला होता कौन है ?"

"फिर भी संगठन में बड़ी शक्ति होती है, पिता जी। आपको अभिसार की सम्पूर्ण सैन्य-शक्ति कैकय की सहायकता को भेजनी चाहिये··· ।"

अभिसार-राज तिष्यदेव पुत्री की बात सुनकर एक क्षण मौन हो गया और तब उसने कहा—"ठीक है। अभिसार की सेनायें कैकय जावेंगी। वे वितस्ता के किनारे खड़ी रहेंगी और जब तक पोरस मेरे प्रस्ताव पर स्वीकारोक्ति न देगा—वे शान्त खड़ी रहेंगी।"

"इसका समय नहीं है पिता जी। वह अब मेरा वैयक्तिक प्रश्न हो गया है। उसे मैं ठीक कर लूंगी। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मुक्त-हृदय से पोरस महान् की सहायता करें। उत्तरापथ को आश्वस्त करें।"

वितस्ता की दाहिनी ओर अलेक्जेन्डर महान् की सर्वदेशीय प्रबल सैन्य शक्ति संचित थी और उसके दूसरी ओर भारत के स्वाभिमानी सम्राट् वीर पोरस की महान् सेना आक्रमण-प्रत्याक्रमण के हेतु सजग-सतर्क थी।

भारत के रण-बांकुरे अपने उत्तरापथ की स्वतन्त्रता एवं समग्र देश

के सम्मान की रक्षार्थ अपने प्राणोत्सर्ग के हेतु तत्पर थे। उनमें असीम उत्साह और महान् पौरुष की उद्दाम थहरन रोम-रोम में व्याप्त हो रही थी।

अलेक्जेन्डर की सेना में वे ही मकदूनिया के पर्वतीय प्रबल योद्धा, ग्रीस के कुशल सैन्य-संचालक एवं उसके विजित देशों के सैनिक भी सम्मिलित थे। पदाति एवं अश्व-सेना के अतिरिक्त अब उसे मध्य-एशिया से रथ एवं धनुर्धर भी अधिक संख्या में प्राप्त हो गये थे। विजित देशों के सेनानी किसी समय विश्वास-घात न करें, इसका ध्यान कर अलेक्जेन्डर के रण-कुशल सेनानायक उन्हें अपनी सेनाओं के बीच में रखते थे।

महान् पोरस की सेना में पदाति, अश्व-सेना, रथ-सेना एवं भयंकर हस्ति-सेना थी। पोरस के सैनिक अलेक्जेन्डर के सैनिकों से अधिक तीव्रता से खड्ग, भाले, बर्छे चला सकते थे तथा उसके सैनिकों से अधिक विशेषता इनके बाण-युद्ध की थी। भारतीय धनुर्धारियों में पदाति भी थे एवं अश्वारोही भी। गज-सेना में भी आगे की पंक्ति धनुर्धारियों की थी।

पोरस ने अपनी सेना का संगठन अलेक्जेन्डर की अपेक्षा अधिक दक्षता से किया था। वह अलेक्जेन्डर की ही भाँति प्रबल व सफल योद्धा था।

वितस्ता के उस पार पोरस की सैन्य-शक्ति को देखकर अलेक्जेन्डर कह उठा—"अन्ततः मुझे वह शत्रु मिल गया, वह सेना मिल गयी। उसी प्रकार के वीर व उत्साही सेनानी मिल गये; जैसे मेरे हैं; जो मुझसे मोर्चा ले सकते हैं। इनका शस्त्र-सन्धान मेरी सैन्य-शक्ति में भय उत्पन्न कर सकता है। यह एक भयजनक आपत्ति मेरे सैनिक-अभियान में प्रथम बार दृष्टिगत हो रही है। वस्तुतः यह युद्ध युद्ध होगा।"

अलेक्जेन्डर ने देखा कि मस्त झूमते गजराज अपने ऊपर तीन-तीन

धनुर्धारी एवं लम्बे भाले लिये हुये योद्धाओं को बिठाये चिंघाड़ से धरती दहला रहे हैं। इनके पीछे अश्वारोहियों की सैन्य-टुकड़ियां आड़ से बाण चलाने में सफल हो सकती हैं। अश्व-सैनिकों एवं गज-सेना के मध्य एक पंक्ति रथ-सेना की है जिसमें एक-एक रथ पर छः-छः योद्धा बैठे हुये हैं, जो खड्ग-भालों-धनुष-बाण से सुसज्जित हैं। और सबके पीछे पदाति सैनिकों की श्रेणियां, भिन्न-भिन्न अस्त्रों से सुसज्जित हैं।

अलेक्जेन्डर की ही भाँति पोरस के सैन्याधिकारी भी कुशल सेनापति तथा वीर योद्धा थे, जिन्होंने पोरस के हेतु न जाने कितनी छोट-बड़ी लड़ाइयाँ जीती थीं।

अपने सैनिक-अभियान के इतिहास काल में प्रथम बार अलेक्जेन्डर की सेना में प्रकम्प तथा भय का संचार हो रहा था किन्तु वे उत्कट योद्धा विजय की पूर्ण आशा लिये युद्ध-रत होने की प्रतीक्षा में समय व्यतीत कर रहे थे और अलेक्जेन्डर युद्ध प्रारम्भ करने की योजना बनाने में, उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में, शत्रु की गति-विधि का मनन करने में, समय व्यतीत कर रहा था।

सचेत तथा सचेष्ट पोरस अपनी सैन्य-शक्ति तथा आत्मबल सहित रण-क्षेत्र में तूर्य-घोषों द्वारा शत्रु को ललकार रहा था।

पोरस युद्धारम्भ की प्रतीक्षा में था और अलेक्जेन्डर उसे भुलावा दे रहा था। अलेक्जेन्डर की सैन्य-पंक्तियाँ वितस्ता के तीर पर इधर से उधर गतिशील बनी रहती थीं, जिनका गूढ़ मनन पोरस भी निरन्तर कर रहा था।

वितस्ता के दो कूल विश्व के दो महान् योद्धाओं की प्रबल सैन्य-शक्तियों को निहार रहे थे।

अपनी सेना में घिरा पोरस अपने राजसी वस्त्र-धारी गजराज पर इधर-उधर घूमता हुआ अपनी सैन्य-श्रेणियों का निरन्तर निरीक्षण

करता रहता था। युवराज किरात भी युद्ध तथा आक्रमण की प्रतीक्षा में अपनी श्रेणियों की व्यवस्था बनाये हुये था।

हिम-गलन ने वितस्ता के जल का प्रवाह तीव्रतर कर दिया था। वह अथाह निर्मल नीर अगम सैन्य-शक्तियों के मध्य से प्रवाहित हो रहा था। सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था। अनायास तीव्र वर्षा से सैन्य-श्रेणियाँ अस्त-व्यस्त हो रही थीं किन्तु युद्ध की आशा में यथावत् स्थानों पर स्थिर थीं।

रात्रि की निबिड़ शून्य उदासी में वर्षा का रोर सैन्य-चालन से भी अधिक तीव्रता प्रकट कर रहा था, और वितस्ता के अगाध जल पर घन-घन कर पड़ती बड़ी-बड़ी बूंदें और उनसे बनते असंख्य वृत्त दोनों ओर की सेनाओं को ज्यों अपने में घेर रहे थे।

वर्षा का वह घोष कहीं छिपाव का कारण बन रहा था। उसमें सैन्य गति-विधि पर दृष्टि रखना असम्भव हो रहा था। पोरस सतर्क भाव से युद्ध की सतत् प्रतीक्षा कर रहा था और अलेक्जेन्डर आक्रमण की निरन्तर योजनायें बनाते-बनाते अपने स्थान से पन्द्रह मील ऊपर चढ़ गया। उसके साथ सबल किंतु संक्षिप्त सैन्य-शक्ति थी। शेष सेना यथास्थान ही समय की प्रतीक्षा कर रही थी।

यहाँ अलेक्जेण्डर ने देखा, वितस्ता ने अपनी दिशा घुमा ली थी और उसके उस किनारे से हटकर एक छोटी पहाड़ी थी जिससे उधर का कुछ भी दिखायी नहीं देता था।

इसी स्थान पर, उस अँधियारे में, घनघोर वर्षा में, गहन वितस्ता-जल को अलेक्जेन्डर ने बेध कर पार किया। एक नाव पर अलेक्जेन्डर अपने सेनानियों—पर्डिका, पोलेकी, लिसिपेसस तथा सेल्यूकस को साथ लेकर उस पार उतर गया और तब प्रातःकालीन उषा के आते-आते उसके

लगभग ग्यारह हज़ार सैनिक उस जल-मार्ग से वितस्ता के दूसरे स्थल पर स्थित हो गये।

वितस्ता के किनारे के सतर्क प्रहरियों ने वायुगति से जाकर पोरस के स्कन्धावार में वह सूचना पहुँचायी और जब क्रेटर आगे बढ़ा तो समक्ष ही उसे किरात, अपने दो हज़ार अश्वारोहियों, सौ से अधिक रथ-वाहनों तथा कुछ हाथियों के साथ मिला।

तत्क्षण ही पोरस-अलेक्जेन्डर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

उत्कट युद्ध में दुर्धर्ष योद्धा पैठ गये।

इस समय तक अलेक्जेन्डर की अश्व-सैन्य-शक्ति भी वहाँ पहुँच-कर युद्ध-रत हो गयी। किरात भीषण युद्ध करता-करता वीरगति को प्राप्त हुआ। क्रेटर के तीखे भाले ने उसे बेध दिया और उस युद्ध की अग्नि-शिखा ने पोरस की समूची सेना को घेर लिया।

यहां से मुख्य युद्ध प्रारम्भ हो गया किंतु प्रकृति-कृति को पराजित कर रही थी। यहाँ प्रतीत हो रहा था कि मानव के मानस-विरचित स्तूप किस प्रकार धराशायी होते हैं। यहाँ लग रहा था कि गति पर नियति का कितना बड़ा हाथ है! यहाँ प्रतीत हो रहा था कि शक्ति मानव की नहीं शक्ति किसी अदृश्य शक्ति की है जो संसार की प्रत्येक शक्ति को शक्ति प्रदान करती है।

पोरस अलेक्जेन्डर से नहीं हारा। वह प्रकृति से पराजित हो गया। वह उस रात्रि की भीषण वर्षा से अवश हो गया। उसके रथ भागते तो उनके पहिये गीली मिट्टी की रपट में धँस जाते। उसमें बैठे सैनिक यों ही उस भाग-दौड़ में दूर जा गिरते!

पदाति सैनिक भूमि पर रखकर जब बाणों का सन्धान करते तो उनके धनुष स्थान-च्युत हो जाते।

वर्षा में सब पदार्थ इतने भारी हो गये कि उनका संभालना तथा उठाना-रखना असम्भव हो गया। अस्त्र-शस्त्रों के बोझ से लदे सैनिक

वर्षा-जल से भीगकर स्वतः त्रस्त हो गये ।

किंतु युद्ध चलता रहा । पोरस अपनी छिन्न-भिन्न सेना को हुंकारता रहा और युद्ध करता रहा । धीरे-धीरे उसके सभी प्रबल सेनापति तथा हज़ारों सैनिक अलेक्जेन्डर की अश्वसेना ने काट डाले ।

तब वह नर-पुंगव उत्तरापथ का एकमात्र वीर योद्धा, भारतीय शासकों में एकमात्र स्वाभिमानी शासक, कुशल युद्ध-संचालक पोरस अलेक्जेन्डर से नहीं प्रकृति से पराजित हो गया ।

पोरस कभी नहीं हारा । पोरस कभी पराजित नहीं हुआ । अलेक्जेन्डर ने कदापि पोरस महान् को युद्ध में परास्त नहीं किया । वह साढ़े छः फीट ऊँचा भारतीय सम्राट् अलेक्जेन्डर की विशाल सैन्य-शक्ति के समक्ष झुका नहीं । उसके शरीर को शस्त्रों ने नौ स्थानों पर बेधा किंतु जब अलेक्जेन्डर का सन्धि-विराम लेकर आम्भी उसके समक्ष आया तो उसने अपना तीव्र बर्छा उस पर फेंक कर मारा ! दैवात् आम्भी बच गया ।

अभिसार की सैन्य-शक्ति पोरस तक पहुँचे, वह युद्ध अनिश्चितता में समाप्त हो गया ।

तब पोरस के मित्र मोरोज ने पोरस को समझाया कि वह अलेक्जेन्डर से भेंट करे । अलेक्जेन्डर ने उसे निमंत्रित किया है ।

"उत्तरापथ के महान् शासक, मैं आपका अभिनंदन करता हूँ । मैं यह व्यक्त करने को तत्पर हूँ कि वास्तव में इस युद्ध में न आपकी पराजय हुयी है न मेरी जय ।

"मैं महान् पोरस के पराक्रम और इस स्थल पर आकर भारतीय सेना के शौर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ । मैं यह निश्चित कह सकता हूँ कि प्रकृति के पक्ष-विपक्ष ने जो स्थिति इस युद्ध में ला दी, उसी के

कारण मुझे खेद है कि सम्राट् ! आपका पुत्र इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ ।

"पेला के राजप्रासाद से प्रस्थान करने के अनन्तर इस क्षण तक, इतिहास साक्षी रहेगा, मैंने भयंकर युद्ध किए व स्थल-स्थल पर मेरी विजय-पताका फहरायी है। मैंने अनेक स्थानों में अपने विजय-चिह्न भी स्थापित किये हैं। अपने नाम से नगरों का निर्माण किया है किंतु वितस्ता के इस युद्ध में मैं अपनी विजय की घोषणा तो कदापि नहीं कर सकता। भविष्य उतना ही अन्धकारमय होता है जितनी विगत रात्रि की अंधियारी। मैं कह नहीं सकता कि यदि प्रकृति मेरा साथ न देती तो मेरा क्या होता ;" कहते हुये अलेक्जेन्डर अपने कैम्प में स्थित उच्चासन पर से उठ खड़ा हुआ ।

अलेक्जेंन्डर तथा पोरस विश्व के दो वीर एक दूसरे के आलिंगन-पाश में आबद्ध थे !

अलेक्जेन्डर ज्यों ही पोरस से पृथक् हुआ कि समक्ष से एक बाण वायु को बेधता हुआ तीक्ष्णतापूर्वक उसके निकट से निकल गया ।

एक चीत्कार के साथ क्रेटर निर्जीव वहीं भूमि पर गिर पड़ा। वह अलेक्जेन्डर के ठीक पीछे खड़ा था।

प्रत्यंगिरा को संकेत से बताया गया था कि क्रेटर के भाले के प्रहार से किरात की मृत्यु हुयी थी।

जब तक मकदूनिया के सशस्त्र प्रहरी प्रत्यंगिरा को पकड़ें, अभिसार युवराज्ञी प्रत्यंगिरा ने कटार अपने वक्ष के पार कर ली।

उपसंहार

अभिसार की प्राकृतिक सुषमा उस बर्बर आक्रांता ने रौंद दी और अपने सेनापति क्रेटर की हत्या के प्रतिरोध एवं प्रतिहिंसा-स्वरूप प्रत्यंगिरा की जन्मभूमि को ध्वस्त कर दिया। अलेक्जेण्डर की दिग्विजय में पराजय की एक इकाई और जुड़ गयी।

सांकल के दुर्धर्ष योद्धा मकदूनिया के शासक की सेना से जूझ गये। कठ-जनपद की स्त्रियों ने भी शत्रु को अपने तीक्ष्ण धनु-प्रहारों से बेध दिया। इन वीराङ्गनाओं ने रण-प्राङ्गण में अपनी आहुतियाँ दे दीं और उत्तरापथ की गौरव-गरिमा एवं स्वदेश के मान-रक्षार्थ अमरत्व प्राप्त कर अहंकार के दर्प को विदीर्ण किया।

आम्भी के देशद्रोह के प्रति तीव्र घृणा की घोषणा में प्रत्यंगिरा ने सांकल की वीराङ्गनाओं का नेतृत्व किया और आत्मोत्सर्ग की सशक्त अभिव्यंजना में वीरगति प्राप्त कर ली।

प्रतिहिंसा की ज्वलन में ओलिम्पियास ने क्ल्यूपेट्रा के शिशु के रुधिर से माँ का आँचल सींच दिया और तब माँ को भी अपना ही फीता बाँध कर आत्महत्या करने को उसने विवश किया। यों वह हिंस्र नारी ओलिम्पियास दर्शक-निर्देशक बनी, समक्ष ही खड़ी रही।

उत्तरापथ का गौरव महान् पोरस कैकय का यथावत् अधिपति बना रहा।

◇ ◇ ◇